



चरचा—शतक

पं. नाथूराम प्रेमीकृत
सुगम हिन्दीटीका सहित

प्रकाशक

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय बम्बई

D

नमः श्रीसर्वज्ञाय
स्वर्गीय कविवर दानतरायजीकृत

चरचा—शतक

सुगम हिन्दी टीका सहित

सम्पादक

देवरी (सागर) निवासी नाथूराम प्रेमी

प्रकाशक

छगलमल बाकलीवाल

मालिक
श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई

दिसम्बर, सन् १९२६ ई.

निवेदन

चरचाशतक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। जैन समाज में इसका खूब प्रचार है। सूत्र ग्रन्थों के समान इसमें थोड़े में बहुत विषय कहे गये हैं। इस ग्रन्थ को अच्छी तरह पढ़ने से जैन शास्त्रों में अच्छी गति हो जाती है। भाषा में इसकी कई टीकाएँ हैं, परन्तु उनमें एक तो बहुत सी त्रुटियाँ हैं और दूसरे उनकी रचना वर्तमान पद्धति के अनुसार नहीं है इसलिए आजकल के लोग उनसे पूरा पूरा लाभ नहीं उठा सकते। इसलिए मैंने यह नवीन प्रयत्न किया है। आशा है कि उसे पाठक पसन्द करेंगे और इसका स्वाध्याय करके मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

ग्रन्थ के मूलपाठ के संशोधन में बहुत सावधानी रक्खी गई है और ग्रन्थकर्ता की मूलभाषा को ज्यों की त्यों रखने की चेष्टा की गई है।

लगभग ४० पद्यों की टीका का संशोधन जैनसमाज के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् के द्वारा कराया गया है और और शेष का पण्डित वंशीधर जी शास्त्री से। गड़ाकोटा निवासी श्रीयुत पं. दरयावसिंह जी सोधिया ने भी एक बार इस टीका को आद्योपान्त देखने की और संशोधन करने की कृपा दिखलाई है। उक्त तीनों ही विद्वानों की कृपा से मैं समझता हूँ इस टीका में बहुत ही कम भूलें रही होंगी और इसलिए मैं उक्त तीनों महानुभावों का हृदय से आभार मानता हूँ।

हीराबाग, बम्बई

ता. ७-४-१९२३

नाथूराम प्रेमी

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
१.	मंगलाचरण	
२.	अलोक और लोक का स्वरूप	
३.	तीन लोक का स्वरूप	
४.	तीनों लोकों का घनफल	

५.	अधोलोक का घनफल	
६.	उर्ध्वलोक का घनफल	
७.	तीन सौ तेतालीसराजूकाब्योरा	
८.	वातवलियों का परिणाम	
९.	तीन लोक के पदलों का वर्णन	
१०.	छहों संहननवाले जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होते हैं?	
११.	छह कालों और चौदह गुणस्थानों में कौन कौन संहनन होते हैं	
१२.	तीर्थकरों का अन्तराल समय	
१३.	कर्मों की १४८ प्रकृतियाँ कौन कौन गुणस्थानों में क्षय होती हैं?	
१४.	मानुषोत्तर पर्वत का परिमाण	
१५.	देवदेवी संभोग	
१६.	एक सौ उनहत्तर प्रधान पुरुष	
१७.	एक सौ अड़तालीस कर्म प्रकृतियाँ	
१८.	भव—क्षेत्र—पुद्गल—जीवविपाक की प्रकृतियाँ	
१९.	सर्वघाती और देशघाती प्र.	
२०.	पाँच त्रिभंगी	
२१.	बन्ध, उदय और सत्ता	
२२.	पाप प्रकृतियों नाम	
२३.	पुण्य प्रकृतियों के नाम	
२४.	जिनमती की श्रद्धा	
२५.	कुलकोड़	
२६.	अंकगणना के ग्यारह भेद	
२७.	तेरहवें गुणस्थान में सात त्रिभंगी	
२८.	बन्ध शतक	
२९.	तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालय	
३०.	तीन कम नौ कोटि मुनि	
३१.	अढाई द्वीप का ज्योतिषमण्डल	
३२.	आयुकर्मबन्ध के नौ भेद	
३३.	सत्तावन जीवसमास	
३४.	अट्टानवै जीवसमास	
३५.	प्रमादों के भेद	
३६.	ज्योतिष मण्डल की चौड़ाई	
३७.	गुणस्थानों का गमनागमन	
३८.	तीर्थकरों के शरीर का वर्ण	
३९.	मंगलाचरण	
४०.	चौदहमार्गणा में प्ररूपणा	
४१.	बारह प्रसिद्ध पुरुष	
४२.	द्वीपसमुद्रों के चन्द्रमा	
४३.	अधोलोक के चैत्यालय	

४४.	मध्यलोक के चैत्यालय	
४५.	ऊर्ध्वलोक के चैत्यालय	
४६.	सौधर्म इन्द्र की सेना	
४७.	इन्द्रियों के विषय की सीमा	
४८.	समुद्घांत के समय योग	
४९.	मिथ्याती की मुक्ति न हो	
५०.	आठ कर्मों के आठ दृष्टान्त	
५१.	गुणस्थानों में सत्तावन आस्रव	
५२.	गुणस्थानों में १२० प्रकृतियों का बन्ध	
५३.	गुणस्थानों में १२२ प्रकृतियों का उदथ	
५४.	गुणस्थानों में १२२ प्रकृतियों की उदीरणा	
५५.	गुणस्थानों में प्रकृतियों की सत्ता	
५६.	अन्तर्मुहूर्त के जन्ममरणों की गिनती	
५७.	घाति कर्मों की प्रकृतियाँ	
५८.	मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ	
५९.	अघाति कर्मों की प्रकृतियाँ	
६०.	नामकर्म की प्रकृतियाँ	
६१.	जम्बूद्वीप के पूर्वपश्चिम का वर्णन	
६२.	जम्बूद्वीप के दक्षिण उत्तर का वर्णन	
६३.	अधोलोक के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या	
६४.	ऊर्ध्वलोक के श्रेणीबद्ध विमान	
६५.	लवणोदधि के १००८ कलशों का वर्णन	
६६.	त्रेसठ इन्द्रकविमान	
६७.	१२० प्रकृतियों का बन्ध और उदय	
६८.	पंचपरावर्तन का स्वरूप	
६९.	पाँच लब्धियाँ	
७०.	नन्दीश्वर द्वीप	
७१.	मेरु का वर्णन	
७२.	मेरु पर्वत का पूर्व पश्चिम विस्तार	
७३.	चौदह गुणस्थानों में मरकर जीव कहाँ कहाँ जाता है।	
७४.	नववें गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों का क्षय	
७५.	जिनवाणी की संख्या	
७६.	चौदह गुणस्थानों में कर्मों का आस्रव	
७७.	चौदह गुणस्थानों में चारों आयुओं का बन्ध और उदय	
७८.	आठ स्थानों में निगोद नहीं, चार स्थानों में सासादन जीव नहीं जाते आदि कथन	
७९.	सात नरकों और सोलह स्वर्गों से आवागमन	
८०.	कषायों के दृष्टान्त और उनके फल	
८१.	चौदह गुणस्थानों में चौतीस भावों की व्युच्छिति	
८२.	बारह गुणस्थानों में उन्नीस भाव	
८३.	चौदह गुणस्थानों में त्रेपन भाव	

८४.	चारों गतियों में आस्रवद्वार	
८५.	चारों गतियों में त्रेपन भाव	
८६.	छहों लश्यावालों के मिथ्यात्व गुणस्थान में कौन कौन कर्मों का बन्ध होता है?	
८७.	चैरासी लाख योनियाँ	
८८.	वे त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ कि जिनका नाश होने पर केवल ज्ञान होता है।	
८९.	चारों गतियों में कौन कौन और कितनी कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है।	
९०.	समस्त जीवों की उत्कृष्ट आयु	
९१.	नक्षत्रों के तारे और अकृत्रिम चैत्यालय	
९२.	जिनवाणी के सात भंग	
९३.	सर्वज्ञ के ज्ञान की महिमा	
९४.	कवि का अन्तिम कथन	

D

श्रीवीतरागाय नमः
स्व. कविवर दानतराय जी कृत

चरचा—शतक

सुगम टीका सहित

मंगलाचरण
पंचपरमेष्ठी की स्तुति, छपपय

जय सरवगय अलोक लोक इक उडुवत देखै।
हस्तामल ज्यों हाथीलोक ज्यों, सरव विसेखै॥
छहौं दरव गुन परज, काल त्रय वर्तमान सम।
दर्पण जेम प्रकास, नास मल कर्म महातम॥
परमेष्ठी पाँचौं विघनहर,
मंगलकारी लोक मै।
मन वचन कांय सिर लाय भुवि,

आनंदसौ द्यौ धोक मैं।१॥

अर्थ— वे सर्वज्ञ भगवान् जयवंत हों, जो कि लोक सहित अलोक को आकाश के एक तारे के समान, हथेली पर रक्खे हुए एक आँवले के समान और हाथ की रेखाओं के समान पूरा पूरा देखते हैं; जीवादि छहों^१ द्रव्यों के भूत भविष्यत् वर्तमानकाल सम्बन्धी अनन्तानन्त गुणों और अनन्तानन्त पर्यायों को वर्तमान की नाई अपने ज्ञान में इसप्रकार से प्रकाशित करते हैं, जिस तरह दर्पण (आरसी) में सब घटपदादि पदार्थ एक साथ प्रकाशित होते हैं और जिन्होंने मलरूप महातम अर्थात् कर्मों का महान् अन्धकार अथवा माहात्म्य नष्ट कर दिया है।^२ इस लोक में अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पाँचों परमेष्ठी^३ विघ्नों के हरण करनेवाले तथा मंगल के करनेवाले हैं। इसलिए उन्हें मन वचन काय से पृथ्वी पर मस्तक लगाकर आनन्दपूर्वक धोक देता हूँ अर्थात् प्रणाम करता हूँ।

इस छपपय के पहले चार चरणों में सर्वज्ञ देव की प्रशंसा की गई है और शेष दो में समुच्चयरूप पाँचों परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है।

श्रीनिमिनाथ जी की स्तुति।

बंदौ नेमि जिनंद चंद; सबकौ सुखदाई।
बलनारायणवंदि, मुकुटमणि सोभा पाई॥
व्यंतर इंद्र बतीस, भवन चालीसौ आवैं।
रवि ससि चक्री सिंह, सुरग चौवीसौ ध्यावैं॥
सब देवन के सिरदेवजिन, सुगुरुनिके गुरुराय हौ।
हूजे दयाल मम हालपै, गुण अनंत समुदाय हौ॥२॥^४

^१ जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

^२ 'दर्पण जेम प्रकास नास मल कर्म महातम' का अर्थ इस तरह से भी होता है कि जिस तरह दर्पण के ऊपर का मल निकल जाने से उसमें सब पदार्थ झलकते हैं उसी प्रकार से कर्म मल के नाश हो जाने का ही यह माहात्म्य है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में छहों द्रव्य झलकते हैं।

^३ परमपद में जो तिष्ठे, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

^४ चरचाशतक पर हरजीमल्लराय पानीपत निवासी की जो टब्बारूप टीका है, उसमें दूसरे छपपय के आगे यह एक छपपय और भी मिलता है; परन्तु एक तो मूल पुस्तकों में यह कहीं मिलता नहीं है, दूसरे इसके न केवल अन्त के दो चरण ही दूसरे छपपय के समान हैं, किन्तु भाव भी प्रायः एकसा है। इसलिए हमारी समझ में यह प्रक्षिप्त है। अनुमान होता है कि कवि ने पहले इसे बनाया होगा और पीछे संशोधन के समय पसन्द न आने से अपनी प्रतिपर से इसको काटकर उसके स्थान में दूसरा लिख दिया होगा। पीछे नकल करनेवालों ने कटा हुआ समझ कर दोनों को लिख लिया होगा। उस छपपय को हम यहाँ अर्थ सहित लिख देते हैं—

इंद्र फनिंद नरिंद, पूजि नमि भक्ति बहावैं।
वल्लि नारायण मुकुटवंदि, पंद सोभा पावैं॥

अर्थ— मैं उन बीसवें तीर्थकर श्रीनेमिनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ, जो चन्द्रमा के समान सब जीवों को सुख के देनेवाले हैं और जिनकी वन्दना करके बलभद्र⁴ और श्रीकृष्णनारायण⁵ के मुकुटों में लगी हुई मणियों ने अतिशय शोभा पाई है अर्थात् जिस समय बलनाराण नमस्कार करने के लिए अपना मस्तक नवाते थे, उस समय उनके मुकुटों के रत्न भगवान् के चरणों के नखों की कांति से और भी अधिक चमकने लगते थे, जिनका व्यन्तर देवों के बत्तीस⁶, भवनवासियों के चालीस⁷, ज्योतिष्कों के दो सूर्य⁸ चन्द्र, मनुष्यों का एक चक्रवर्ती, पशुओं का एक सिंह और कल्पस्वर्गों के चौबीस⁹ इसप्रकार सब मिलाकर सौ इन्द्र ध्यान करते हैं और इसलिए हे जिनदेव आप स देवों के सिरदेव अर्थात् शिरोमणि देव हैं, गणधराद्रि सुगुरुओं के गुरुराज हैं और अनन्तानन्त गुणों के समूहरूप हैं। आप मेरे हाल पर अर्थात् संसार भ्रमण की दुर्दशा पर दयालु हूजिये— मुझे कृपाकरके इस दुःख से छुड़ा दीजिए।

अकृत्रिम चैत्यालयों की प्रतिमाओं की स्तुति

**बन्दौ आठ किरोर, लाख छपपन सत्तानौ।
सहस च्यारि सौ असी, एक जिनमंदिर जानौ॥
नव सौ पच्चिस कोरि, लाख त्रेपन सत्ताइस।
बंदौ प्रतिमा सर्व, नौ सौ अड़तालिस॥**

विन जानै जिय भमै, जानि छिन सुरग बसावै।
ध्यान आनि रिधिवान, अमरपद आप लहावै॥
सब देवन के सिरदेव जिने, सुगुरुनिके गुरुराय हौ।
हूजे दयाल मम हाल पै, गुन अनंत समुदाय हौ॥

अर्थ— हे नेमिनाथ भगवान्! आपको इंद्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्र पूज करके तथा नमस्कार करके अपनी भक्ति बढ़ाते हैं और बलभद्र तथा कृष्ण नारायण के मुकुट आपके चरणों की वन्दना करके शोभा पाते हैं। आपको जाने बिना यह जीव इस जन्ममरणरूप संसार में भ्रमण करता रहता है, जानकरके वा श्रद्धान करके क्षणभर में स्वर्ग पहुँच सकता है और ध्यान करके इन्द्र चक्रवर्ती आदि की ऋद्धियाँ प्राप्त करके आप स्वयं अमरपद वा मोक्षपद को प्राप्त होता है। आप सब देवों के सिरताज देव हैं, सुगुरुओं के महान् गुरु हैं और अनंत गुणों के समुदाय हैं। मेरे हालपर दयालु हूजिये अर्थात् मुझे दुखी देखकर दया कीजिए।

⁵ नव में पद्म नामक बलभद्र।

⁶ नववें नारायण।

⁷ व्यन्तर आठ प्रकार के हैं और उनके प्रत्येक भेद में दो दो इन्द्र तथा दो दो प्रतीन्द्र हैं, इस तरह बत्तीस व्यन्तरेन्द्र।

⁸ भवनवासी दश प्रकार के हैं और प्रत्येक में दो दो इन्द्र तथा प्रतीन्द्र हैं।

⁹ सूर्य प्रतीन्द्र है और चन्द्र इन्द्र है।

¹⁰ पहिले चार स्वर्गों में चार इन्द्र और चार प्रतीन्द्र=८, पाँचवें छठे में १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र=२, सातवें आठवें में १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र=२, नववें से बारवें तक में २ इन्द्र, २ प्रतीन्द्र=४, तेरहवें से सोलहवें तक में ४ इन्द्र, ४ प्रतीन्द्र=८, इस तरह १६ स्वर्गों में २४ इन्द्र हैं।

व्यन्तर जोतिक अगणित सकल,
चैत्यालय प्रतिमा नमौ।
आनंदकार दुखहार सब,
फेरि नहीं भववन भमौ॥३॥

अर्थ— मैं तीनों लोकों के आठ करोड, छपपन लाख, सत्तावन हजार, चारसौ इक्यासी ८५६५७४८१ अकृत्रिम जिन मन्दिरों की वन्दना करता हूँ और फिर उन जिन मन्दिरों में की ना सौ पच्चीस करोड त्रेपन लाख सत्ताइस हजार नौ सौ अडतालीस ९२५५३२७९४८ प्रतिमाओं की वन्दना करता हूँ। इनके सिवाय व्यन्तर भवनों में तथा ज्योतिषियों के विमानों में जो असंख्यात प्रतिमाएँ हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ, जिससे फिर इस संसार रूपी वन में भ्रमण नहीं करना पड़े। वे सब मन्दिर और प्रतिमाएँ आनन्द की करनेवाली और दुःखों की हरनेवाली हैं।

सिद्धस्तुति

लोकईस तनुवात सीस, जगदीस विराजै।
एकरूप वसुरूप, गुन अनंतातम छाजै।
अस्ति वस्तु परमेय, अगुरु लघु दरव प्रदेसी।
चेतन अमूरतीक, आठ गुन अमल सुदेसी॥
उत्कृष्ट जघन अवगाह,
पदमासन खरगासन लसै।
सब ग्यायक लोक अलोकविध,
नमौ सिद्ध भवंभय नसै॥४॥

अर्थ— सिद्ध भगवान् तीनलोक के ईश्वर हैं, व्यवहारनय से तनुवातवलय के शीसपर अर्थात् अन्त में जगत के ईश्वररूप में विराजमान हैं, द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं, व्यवहार नय की अपेक्षा सम्यक्ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरु लघु और अव्याबाध इन आठ विशेष गुणरूप हैं तथा अनन्तानन्त गुणों से शोभायमान हैं, अस्तित्व^{११}, वस्तुत्व^{१२}, प्रमेयत्व^{१३},

^{११} अस्तित्व— जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी नाश नहीं हो।

^{१२} वस्तुत्व— जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अर्थक्रियाकारित्व होता है। जैसे घड़े की अर्थक्रिया जलधारण है। इस जलधारण क्रिया को घड़े का वस्तुत्व कहेंगे।

^{१३} प्रमेयत्व— जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी भी ज्ञान का विषय होता है।

अगुरुलघुत्व^{१४}, द्रव्यत्व^{१५}, प्रदेशवत्व^{१६}, चेतनत्व^{१७} और अमूर्तत्व इन आठ निर्मल सामान्य गुणों सहित हैं, निश्चयनय की अपेक्षा से अपने ही प्रदेशों में विराजमान हैं, उत्कृष्ट सवा पाँच सौ धनुष की और जघन्य साढ़े तीन हाथ की अवगाहनावाले हैं, खड्गासन^{१८} या पद्मासन से शोभित रहते हैं और लोक तथा अलोक के समस्त पदार्थों को जानते हैं। ऐसे सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ, जिससे मुझे भवभ्रमण का भय न रहे अर्थात् मुझे फिर संसार में रुलना न पड़े।

आचार्य उपाध्याय सर्व साधु की स्तुति।

आचारज उबझाय, साधु तीनों मन ध्याऊँ।
 गुन छतीस पच्चीस बीस, अरु आठ मनाऊँ॥
 तीनोंकौ पद साध, मुकतिकौ मारग साधैँ।
 भवतनभोग विराग, राग सिव ध्यान अराधैँ॥
 गुनसागर अविचल मेरु सम, धीरजसौँ परिसह सहै
 मैं नामौँ पाय जुग लाय मन, मेरौ जिय वांछित लहै॥५॥

अर्थ— जिनके क्रम से छत्तीस^{१९}, पच्चीस^{२०} और अट्ठाईस गुण^{२१} हैं, मैं उन आचार्य^{२२}, उपाध्याय^{२३} और साधुओं^{२४} का मन में ध्यान करता हूँ और उन्हें मनाऊँ हूँ अर्थात् उनकी सत्कार पूजनादि करता हूँ। इन तीनों को साधु का पद है अर्थात् आचार्य उपाध्याय और साधु ये सब साधु कहलाते हैं; क्योंकि ये रत्नत्रय रूप मोक्ष के मार्ग को साधते हैं। ये संसार, देह और पंचेन्द्रिय के विषयों से तो अतिशय

¹⁴ अगुरुलघुत्व— जिसके निमित्त से द्रव्य का द्रव्यत्व बना रहता है, अर्थात् एक द्रव्य दूसरे रूप नहीं हो जाता है— एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं हो जाता है और एक द्रव्य के अनन्त गुण बिखरकर जुदे जुदे नहीं हो जाते हैं।

¹⁵ द्रव्यत्व— जिसके योग से द्रव्य की पर्यायें हमेशा पलटती रहती हैं।

¹⁶ प्रदेशवत्व— जिसके योग से द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है।

¹⁷ अमूर्तत्व— पुद्गल के स्पर्श आदि चार गुणों से रहित।

¹⁸ सिद्धान्त में ८४ आसन कहे हैं; परन्तु मोक्ष केवल खड्गासन और पद्मासन से ही होता है।
 ३ बारह तप, छह आवश्यक, पाँच आचार, दश धर्म और तीन गुप्ति, सब छत्तीस गुण आचार्यों के होते हैं।

¹⁹ बारह तप, छह आवश्यक, पाँच आचार, दश धर्म और तीन गुप्ति, सब छत्तीस गुण आचार्यों के होते हैं।

²⁰ ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का जानना ये पच्चीस गुण उपाध्यायों के हैं।

²¹ पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक क्रियाएँ, बालों का उखाड़ना, वस्त्रों का त्याग (नमनता), स्नानत्याग, दन्तधावनत्याग, भूमिपर सोना, और खड़े खड़े एक बार अल्प आहार लेना; ये अट्ठाईस मूल गुण साधुओं के हैं।

²² दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन पाँच आचारों को जो आप आचरण करें और दूसरों को आचरण करावें, उन्हें आचार्य कहते हैं।

²³ जो ग्यारह अंग चौदह पूर्व आप पढ़े तथा औरों को पढ़ावें, वे उपाध्याय हैं।

²⁴ पाँच इन्द्री और मन को वश में करके मोक्ष, मार्ग को जो साधे, वे साधु हैं।

विरक्त रहते हैं; परन्तु मोक्ष से राग रखते हैं। ध्यान की आराधना करते हैं, गुणों के सागर होते हैं, सुमेरु पर्वत के समान अविचल (अचल) होते हैं और धीरज के साथ बड़ी बड़ी परीसहों का सहन करते हैं। मैं उनके चरणों को मन लगाकर नमस्कार करता हूँ, जिससे मेरा मोक्षप्राप्तिरूप मनोरथ सफल हो।

अलोक और लोक का स्वरूप

अचल अनादि अनंत, अकृत अनमित अखंड सब।
अमल अजीव अरूप, पंच नहीं इक अलोक नभ॥
निराकार अविकार, अनंत प्रदेश विराजै।
सुद्ध सुगुन अवगाह, दसौं दिस अंत न पाजै॥
या मध्य लोक नभ तीन विध,
अकृत अमित अनईसरौ।
अविलच अनादि अनअंत सब,
भाख्यौ श्रीआदीस्वरौ॥६॥

अर्थ— श्रीआदीश्वर भगवान् ने अर्थात् पहिले तीर्थकर श्री ऋषभदेन ने लोक अलोक का स्वरूप इसप्रकार कहा है— अलोकाकाश अचल है, अनादि काल से है, अनन्तकाल तक रहेगा, अकृत है अर्थात् उसे किसी ब्रह्मा आदि ईश्वर ने नहीं बनाया है— स्वयं सिद्ध है, अनमित है अर्थात् कोई महादेवादि उसका संहार नहीं कर सकते हैं— मिटा नहीं सकते हैं, अखंड है, सर्वत्र फेला है, निर्मल है, अजीव है अर्थात् चेतना रहित जड़ है, अमूर्तीक है, उसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँच द्रव्य नहीं हैं, गोल त्रिकोणा आदि किसी प्रकार का उसका आकार नहीं है, विकाररहित शुद्ध द्रव्य है, अनन्तानन्त प्रदेशों से शोभित है, शुद्ध है, अवगाहना वा स्थान देना यह जिसका असाधारण गुण है, और जिसका नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम आदि दशों दिशाओं में कभी अन्त नहीं आता है। इस महान् अलोकाकाश के बीचों बीच लोकाकाश है, जो ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक के भेद से तीन प्रकार का है। इस लोक को भी किसी ने रचा नहीं है, कोई मिटा नहीं सकता है, कोई इसका स्वामी नहीं है, अचल है, अनादि है और अनन्त भी है।

तीन लोक का स्वरूप

सवैया इकतीसा (मनहर)।

पूरब पच्छिम सात—नर्कतलै राजू सात,

आगँ घटा मध्यलोक राजू एक रहा है।
 ऊँचै बढ़ि गया ब्रह्म लोक राजू पाँच भया,
 आगँ घटा अंत एक राजू सरदहा है॥
 दच्छिन उत्तर आदि मध्य अंत राजू सात,
 ऊँचा चौदै राजू षट द्रव्य भरा लहा है।
 असंख्यात परदेस मूरतीक कियौ भेस,
 करै धरै हरै कौन स्वयंसिद्ध कहा है॥७॥

अर्थ— सातवें नरक के नीचे (जहाँ कि त्रस जीव नहीं हैं—
 निगोद जीव भरे हैं) इस लोक की चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक सात
 राजू है। उससे ऊपर क्रम से घटता गया है, सो मध्य²⁵ लोक में
 सुदर्शन मेरु की जड़ में केवल एक राजू चौड़ा रह गया है। आगे फिर
 विस्तृत हो गया है सो, ब्रह्म स्वर्ग के अन्त²⁶ में पाँच राजू होकर फिर
 घटने लगा है और अन्त में सिद्धालय के ऊपर फिर एक राजू रह गया
 है। (यह जगह जगह की पूर्व से लेकर पश्चिम तक चौड़ाई बतलाई
 गई। अब उत्तर दक्षिण की मोटाई बतलाते हैं।) आदि मध्य और अन्त
 में सब जगह अर्थात् मूल से लेकर लोकशिखर के अन्ततक सर्वत्र सात
 राजू मोटाई (उत्तर से दक्षिण) है और ऊँचाई आदि से अन्ततक की
 चौदह राजू है। इस लोक में जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और
 काल ये छहो²⁷ द्रव्य भरे हुए हैं। इसके असंख्यात प्रदेश हैं (एक
 परमाणु जितना आकाश रोकता है, उसे एक प्रदेश कहते हैं।) इसने
 मूर्तीक वेष धारण किया है, अर्थात् यद्यपि लोकाकाश²⁸ मूर्ति रहित है—
 स्पर्श रसगंधवर्ण रहित है, तो भी मूर्तीक अर्थात् डेड मुरज (मृदंग)
 आकार है। यह स्वयं सिद्ध है। इसको न कोई बनाता है, न कोई धारण
 करता है और न कोई संहार करता है।

तीनों लोक तीनों वातवलै बेढ़े सब ठौर,
 वृच्छलाल अडजाल तनचाम देखिए।
 अधोलोक बेत्रासन मध्यलोक थाली भन,
 ऊरध मृदंग गनि ऐसो ही विसेखिए॥
 कर कटि धारि पाउंकौ पसारि नराकार,
 डेढ़ मुरज आकार अविनासी पेखिए।

²⁵ सात राजू की ऊँचाई पर।

²⁶ नीचे से साढ़े दश राजू की ऊँचाई पर।

²⁷ जहाँ जीव अजीवादि पाँच द्रव्य नहीं हैं, केवल एक आकाश द्रव्य है, उसे अलोकाकाश कहते हैं।

²⁸ मूल से सात राजू की ऊँचाई तक अधोलोक है, सुमेरुपर्वत की ऊँचाई के बराबर एक लाख चालीस योजन मध्य लोक है और सुमेरु से ऊपर एक लाख चालीस योजन कम सात राजू ऊर्ध्वलोक है।

घरमाहिं छीकौ जैसैं लोक है अलोक बीच,
छींकेकौ अधार यह निराधार लेखिए॥८॥

अर्थ— तीनों लोक सब जगह घनोदधि वातवलय, घन वातवलय और तनुवातवलय इन तीन वातवलयों से इस तरह घिर रहे हैं, जैसे वृक्ष छाल (वल्कल) से, अंडा अपने ऊपर की जाली से और जीवों के शरीर चमड़े से लिपटे वा घिरे दिखलाई देते हैं। अभिप्राय यह कि सारा लोक घनोदधि वातवलय से घिरा हुआ है, घनोदधि वातवलय घन वातवलय से घिरा है और इसी प्रकार घनवातवलय तनुवातवलय से वेष्टित है। इन तीन लोकों में से अधोलोक वेत्रासन²⁹ के अर्थात् बेत के बने हुए आसन के समान है, मध्य लोक थाली³⁰ के समान है, और ऊर्ध्वलोक बीच में चौड़ा और ऊपर नीचे संकीर्ण आकारवाले मृदंग³¹ के आकार का है। दोनों हाथों को कमर पर रखके उस पर एक पूरे मृदंग के रखने से जैसा आकार बनता है, वैसा समूचे लोक का आकार है। यह लोक अविनाशी है, अर्थात् सदा से है और सदा रहेगा। जिस तरह घर में छींका लटका रहता है, उसी प्रकार से अनन्त अलोकाकाश के बीच में यह लोक लटक रहा है, अन्तर सिर्फ इतना है कि छींका एक रस्सी के आधार से लटका रहता है, परन्तु लोक निराधार है,— उसको कोई सहारा नहीं है। अर्थात् लोक घनोदधि वातवलय के आधार है, घनोदधि घनवातवलय के और वह तनुवातवलय के आधार हैं। तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश स्वप्रतिष्ठित है— उसे किसी का आधार नहीं है। क्योंकि वह सर्वव्यापी है। तनुवात के अन्ततक लोकसंज्ञा है।

तीन सौ तेंताल राजू घनाकार सब लोक,
घनोदधि घन तनुवातके अधार है।
तामैं चौदै चौखूटी त्रसनाली त्रस थावर,
परैं तीनसौ उन्तीस थावर सदा रहै।
दच्छिन उत्तर डोरी वियालीस राजू सब,
पूरब पश्चिम उनतालकौ विचार है।
राजू अंस बीसासौ तेतालीस अधिक कहे,
लोक सीस सिद्धनिकौ मेरौ नमोकार है॥९॥

²⁹ अधोलोक अपनी तली में सात राजू चौड़ा और सात राजू मोटा इस तरह चौकोर वा समचौरस है।

³⁰ मध्यलोक का स्थंडिल अर्थात् चबूतरा चौकोर है। थाली की उपमा स्वयंभूरमण समुद्रतक की ही विवक्षा से ग्रथकार ने दी है। समचौकोर क्षेत्र में वृत्त खींचने पर जो चार कौने शेष रह जाते हैं, वे इस दृष्टान्त में अपेक्षित नहीं हैं। उनकी अपेक्षा लेने से मध्यलोक चौकी के आकार हो जाता है।

³¹ मृदंग के आकार ऊँचरूप।

अर्थ— सारे लोक का घनफल ३४३ राजू है। (लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के गुणनफल से जो निकलता है, उसे घनफल कहते हैं। यदि समस्त लोक के एक राजू लम्बे चौड़े और मोटे खंड किये जावें, तो उनकी संख्या ३४३ होगी) और पहिले कहे अनुसार) यह लोक घनोदधिवात, घनवात और तनुवातवलय के आधार से ठहरा हुआ है। इसके बीच में १४ राजू ऊँची और चौखूँटी अर्थात् एक राजू लम्बी एक राजू चौड़ी (पांसेसरीखी) त्रसनाली है, जिसमें त्रस और स्थावर जीव रहते हैं और उस त्रसनाली के बाहिर शेष^{३२} ३२९ राजू के स्थान में केवल स्थावर^{३३} जीव रहते हैं। सब लोकाकाश की दक्षिण उत्तर डोरी^{३४} ४२ राजू है अर्थात् लोक के नीचे की और ऊपर की मोटाई सात सात राजू; और दोनों तरफ की ऊँचाई चौदह चौदह राजू इस तरह ४२ राजू है और पूर्व पश्चिम डोरी कुछ अधिक ३९ राजू अर्थात् $39^{3/4}/120$ राजू है। ऐसे विस्तारवाले लोक के सीसपर अर्थात् ऊपर (तनुवातवलय में) जो सिद्ध भगवान् विराजमान हैं, उनको मेरा नमस्कार है।

इस सवैया में जो पूर्व पश्चिम की डोरी ३९ से ४३।१२० अधिक बतलाई है, इसका कारण क्षेत्रगणित से इसप्रकार स्पष्ट होता है— नकशे में क से घ तक की रेखा ७ राजू है और क से ख तक तथा ग से घ तक तीन तीन राजू हैं, क्योंकि ख ग एक राजू है। और ख से च तक तथा ग से ठ तक की रेखाएँ हमको मालूम हैं कि सात सात राजू हैं। इस तरह हमको क ख च तथा ग घ ठ त्रिभुजों की दो रेखाओं की लम्बाई मालूम है और क च तथा घ ठ करणों की लम्बाई निकालना है। कोटि के वर्ग में भुजा के वर्ग को जोड़ने से जो संख्या आती है, उसका वर्गमूल निकालने से करण मालूम हो जाता है। इस नियम के अनुसार $7 \times 7 + 3 \times 3 = 58$ का वर्गमूल ७^{३/४} क च रेखा हुई और इतनी ही घ ठ हुई। अब इन दोनों का इकट्ठा करने से $15^{3/4}$ हुआ। ठीक इसी रीति से च छ, छ ज, झ ट और ट ठ रेखाओं की लम्बाई निकालने से $\sqrt{16\frac{1}{4}} \sqrt{16\frac{1}{4}} \sqrt{16\frac{1}{4}} \sqrt{16\frac{1}{4}}$ का वर्गमूल $16^{1/4}/8$ हुआ। अब $15^{3/4}/30+16^{1/4}/8$ में लोक के नीचे की (क घ की) लम्बाई ७ राजू और लोक के ऊपर की (ज झ) की लम्बाई ७ राजू और लोक के ऊपर की (ज झ) की लम्बाई १ राजू

^{३२} लोक का कुल घनफल ३४३ राजू है। इसमें त्रस नाड़ी का घनफल $1 \times 1 \times 1 = 1$ निकाल दीजिए, तो ३२९ शेष रह जावेंगे।

^{३३} एकेंद्री जीवों को अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति कावके जीवों को स्थावर कहते हैं और दो इन्द्री से लेकर पंचेन्द्री जीवों तक को त्रस जीव कहते हैं।

^{३४} घेरा व परिधि।

जोड़ने से ३९^{४३}/१२० हो जावेंगे, जो कि ३९ से ४३/१२० अधिक हैं।

ऊखलमैं छेक वंसनाल लोक त्रसनाली,
 ऊँची चौदै चौरा एक राजू त्रस भरी है।
 यामैं त्रस बाहिर थावर आउ बाँधी कहुँ,
 मर्नसौँ अगाऊ गयौ त्रस चाल करी है॥
 बाहिर थावर कोउ त्रस आउ बाँधी होउ,
 मर्न समै कारमान त्रसरीति धरी है।
 केवल समुद्धात त्रसरूप तहाँ जात,
 तीनाँ भाँति उहाँ त्रस जिनवानी खिरी है।१०॥

अर्थ— ऊखली में जिस तरह एक पौली बांस^{३५} की नली खड़ी कर दी हो, इस तरह लोकाकाश के बीच में त्रसनाली है जो चौदह^{३६} राजू ऊँची और एक राजू चौड़ी है तथा त्रस जीवों^{३७} से भरी हुई है। ये त्रसजीव यद्यपि



त्रसनाडी के ही भीतर होते हैं— बाहिर कहीं भी इनका अस्तित्व नहीं कहा है, तो भी आगे कहे हुए तीन प्रकारों से त्रसजीव त्रसनाडी से बाहिर भी पाये जाते हैं, एक तो कोई त्रस जीव जब स्थावर जीव की आयु का बंध^{३८} करता है, तब वह त्रस आयु के अन्तर्मुहूर्तकाल बाकी रहने पर मरण के समय मारणान्तिक समुद्धात करता है। उस समय उसके कुछ प्रदेश त्रसनाडी से बाहिर जहाँ वह स्थावरपर्याय धारण करेगा, वहाँ जाते हैं, सो इस अपेक्षा से त्रसनाडी से बाहिर का कोई स्थावर जब त्रस पर्याय की आयु का बंध करता है, तब मरण के

³⁵ बाँस की नली की उपमा पोलेपन के कारण दी है; परन्तु त्रसनाली गोल नहीं है। चौपड़ के पाँसे की नाई लम्बी चौखूँटी है।

³⁶ त्रसनाली सामान्य रूप से १४ राजू लम्बी है; परन्तु बारीकी से देखा जाय तो कुछ कम तेरा राजू है। क्योंकि सातवें नरक के नीचे एक राजू में त्रस जीव नहीं हैं— निगोदिया हैं, और सातवें नरक की भूमि की कुछ कम आधी मोटाई में और सर्वार्थसिद्धि के ऊपर इक्कीस योजन में त्रस जीव नहीं हैं और त्रसनाली उतनी ही को कहना चाहिए, जितने में त्रस जीव हो।

³⁷ यहाँ 'त्रस' शब्द उपलक्षण है। अर्थात् त्रसनाडी में केवल त्रस जीव ही नहीं भरे हैं, पृथ्वी आदि पाँच प्रकार के स्थावर भी हैं; परन्तु त्रसनाडी के बाहिर अन्यत्र कहीं भी त्रसजीव नहीं हैं, इसलिए त्रसनाडी में त्रस जीव भरे हैं, ऐसा कहा है और त्रसनाडी में प्रधानता भी त्रसों की ही है।

³⁸ जिस आयु को जीव भोगता है, उसके तीन भागों में से दो भाग भोग लेने पर आगामी भव की आयु बाँधने की योग्यता होती है। अर्थात् दो भाग भोग लेने पर आगामी भव की आयु बाँध जाती है; परन्तु यदि उस समय नहीं बाँधे, तो एक भाग जो बाकी रह गया है, उसके तीन भागों में से दो भाग बीत जाने पर बाँधती है और यदि उस समय भी नहीं बाँधती है तो फिर जो शेष रहती है, उसके तीन भागों में से दो भाग बीतने पर बाँधती है, इस तरह अधिक से अधिक आठ अपकर्षण होते हैं। यदि इनमें भी आयु न बाँध पाई होतो भुज्यमान आयु में आवला के असंख्यातवें भाग काल बाकी रहने के पहले अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर भीतर किसी समय में तो अवश्य ही बाँध जाती है।

समय कार्माण शरीर सहित त्रसनामा नाम कर्म के उदय से त्रस होकर त्रसनाडी के प्रति गमन करता है, उस समय विग्रह गति में त्रसनाडी के बाहिर त्रस का अस्तित्व हुआ और तीसरे केवली भगवान् जब केवलसमुद्घात करते हैं, तब उनके प्रदेश त्रसनाडी और उससे बाहिर सर्वत्र लोक में व्याप्त हो जाते हैं, सो इस तरह भी त्रसनाडी से बाहिर त्रस का अस्तित्व हुआ। क्योंकि केवली भगवान् त्रस हैं। इस तरह तीन प्रकार से त्रसनाडी के बाहिर भी त्रस जीवों का अस्तित्व जिनवाणी में बतलाया है।

तीनों लोकों का घनफल

छप्पय

पूरब पच्छिमतलैं सात, मधि एक बखानी।
 पंच स्वर्गमें पाँच, अंत में एक प्रवांनी॥
 चहुँ मिलाय चहुँ अंस, तीनि साढ़े परमानौ।
 दच्छिन उत्तर सात, साढ़ चौबीस बखानौ॥
 ऊँचा चौदै राजू गुणौ, अधिक तितालिस तीनसै।
 यह घनाकर तिहुँ लोककौ, केवलग्यानविषैलसै॥११॥

अर्थ— यह लोक तली में पूर्व पश्चिम सात राजू, मध्य में एक राजू, पाँचवें स्वर्ग में पाँच राजू, और अन्त में एक राजू चौड़ा है। इस तरह चारों स्थानों की चौड़ाई का जोड़ १४ राजू होता है, इसके चार अंश करो, अर्थात् चौदह में चार का भाग दो, तो साढ़े तीन होंगे। इस ३॥ में लोक की दक्षिण उत्तर की मुटाई सात राजू का गुणा कर दो, तो २४॥ साढ़े चौबीस होंगे। और फिर इस चौड़ाई और मुटाई के गुणनफल में १४ राजू ऊँचाई का गुणा कर दो, तो ३४३ राजू होंगे। यही तीनों लोकों का घनफल^{३९} है, जो भगवान् के केवलज्ञान में भासमान होता है।

अधोलोक का घनफल

पूरब पच्छिम तलैं सात, मधि एकै गाई।
 उभय मिलेसैं आठ, अर्धकरि चारि बताई॥
 दच्छिन उत्तर सात, गुणौ अट्टाइस राजू।
 ऊँचा राजू सात, सतक छयानवै भया जू॥

³⁹ लम्बाई चौड़ाई और मुटाई के गुणनफल को घनफल कहते हैं। लोक की चौड़ाई चार स्थानों में चार तरह की कम ज्यादा थी, इसलिए उसको जोड़कर चार का भाग करके औसत चौड़ाई निकाल ली और फिर उसमें लम्बाई तथा मुटाई गुणा किया।

यह अधोलोक का सब कहा, घनाकार जिनधरममें।
मति परौनरकमें पापकरि, रहौ सुमारग परममें।१२॥

अर्थ— लोक के नीचे पूर्वपश्चिम चौड़ाई सात राजू और मध्यलोक में एक राजू कही है। इन दोनों को मिलाने से आठ, और आधा करने से चार राजू होते हैं। इनमें दक्षिण उत्तर मुटाई सात राजू का गुणा करने से अट्ठाइस राजू होते हैं और उनमें अधोलोक^{४०} की ऊँचाई सात राजू का गुणा करने से १९६ राजू होते हैं। जैनधर्म में अधोलोक का सारा घनफल यही १९६ राजू कहा है। अधोलोक में जीव पाप के उदय से उत्पन्न होता है। इससे हे भव्यप्राणियों, पाप करके नरक में मत पड़ो, उत्कृष्ट सुमार्ग अर्थात् जिनधर्म में रहो। वीतराग मार्ग की उपासना करते रहो।

ऊर्ध्वलोक का घनफल

मध्यलोक इक ब्रह्म, पाँच दुहुं मिले भए षट।
पूरब पच्छिम दिसा, अर्ध करि तीन राजु रट॥
दच्छिन उत्तर सात, गुणी इकईस बखानी।
ऊँचे साढ़े तीन, साड़ तेहत्तरि जानी॥
साढ़ तिहत्तरि विध यही, लोक अंतसौ ब्रह्म लग।
राजू इकसौ सैंताल सब, धरम करैं पावैं सुमग।१३॥

अर्थ— मध्यलोक में पूर्व पश्चिम दिशा की चौड़ाई एक राजू और ब्रह्मस्वर्ग में पाँच राजू है। दोनों को मिलाने से छह राजू हुए। इनके आधे किये तो तीन राजू हुए। इनसे दक्षिण उत्तर की मुटाई सात राजू का गुणाकार किया, तो इक्कीस राजू हुए और उसमें ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई साढ़ेतीन का गुणा किया, तो ७३॥ साढ़े तेहत्तर राजू हुए। यह मध्यलोक से ब्रह्मस्वर्ग तक का घनफल हुआ और इसी प्रकार से इतना ही अर्थात् ७३॥ राजू घनफल ब्रह्मस्वर्ग से लोक के अन्त तक हुआ और दोनों का जोड़ अर्थात् ऊर्ध्वलोक का कुल घनफल १४७ राजू हुआ। यह ऊर्ध्वलोक का सुमार्ग धर्म करने से प्राप्त होता है।

तीनसौ तेतालीस राजू का जुदा जुदा ब्योरा

छियालीस चालीस, और चौतीस अठाई।
बाइस सोलै दस, उनीस साढ़े बतलाई॥

⁴⁰ निगोद से लेकर मेरुपर्वत की जड़तक अधोलोक है, जो ७ राजू ऊँचा है। चित्राभूमि के नीचे खरभाग, पंकभाग, सातों नरक और निगोद सब अधोलोक वा पाताललोक में गर्भित हैं

साढ़े सैंतिस साढ़, सोल साढ़े सोला भनि।
 आगैं दो दो हीन, अंत ग्यारा राजू गनि॥
 इम सात नरक आठौं जुगल, ऊपर सोला थानमैं।
 राजू तेतालिस तीनसै, घनाकार कहि ग्यानमैं।१४॥

अर्थ— सातों नरकों का, स्वर्ग के आठों युगलों का और सोलहवें स्वर्ग से लेकर लोक के अन्त तक सोलह स्थानों का क्रम^{४१} से ४६, ४०, ३४, २८, २२, १६, १०, १९॥, ३७॥, १६॥, १६॥, १४॥, १२॥, १०॥, ८॥ और ११ राजू घनफल है और उस सबका जोड़ ३४३ राजू घनाकार होता है, ऐसा शास्त्र में कहा है।

तीनों वातवलयों का जुदा जुदा परिमाण।
 सवैया इकतीसा (मनहर)।

तलैं बातबलै मौटे जोजन सहस साठ,
 ऊँचै एक राजूलौं साठ सहस धारने।
 आगैं सात पाँच चारि तीनों सोलै जोजनके,
 मध्य पाँच चारि तीन बाराकै चितारने॥
 ब्रह्मलोक तीनों सोलै अंतमाहिं तीनों बारै,
 सीस दोय कोस एक कोस के बिचारने।
 तनुबात धनुष पौनै सोलैसै ताके भाग,
 पंद्रहसै सिद्ध एक भागमैं निहारने।१५॥

अर्थ— लोक के तले से लेकर एक राजू की ऊँचाई तक अर्थात् निगोद तक तीनों वातवलयों^{४२} की मुटाई साठ हजार योजन है, अर्थात् प्रत्येक वातवलय बीस बीस हजार योजन मोटा हैं इसके आगे

⁴¹ लोक के तले की चौड़ाई ७ राजू है और सातवें नरक के नीचे की चौड़ाई ४३ का सातवाँ भाग है। इन दोनों को जोड़ा तो $7/1+43/7=92/7$ हुए, और आधा किया तो $46/7$ हुए। अब इसमें उत्तर दक्षिण मुटाई का और एक राजू ऊँचाई का गुणा करते हैं, तो $49/7 \times 7/1 \times 1/1=49$ राजू घनफल लोक के नीचे से सातवें नरक के नीचे तक का हुआ। इसी तरह से सातवें नरक के नीचे की चौड़ाई और छठे नरक की नीचे की चौड़ाई $33/7$ को मिलाने, आधा करने और सात से तथा एक से गुणा करने पर ४० राजू सातवें नरक का घनफल हुआ। आगे भी इसी तरह से समझ लेना।

⁴² वातवलय एक प्रकार की वायु के पुंज हैं, जो समस्त लोक को घेरे हुए हैं, और जिनके आधार से लोक आकाश में ठहरा हुआ हैं सब लोक पहले घनोदधि वातवलय से वेष्टित है। इस वातवलय में जलमिश्रित वायु है। इस वातवलय को दूसरे घनवातवलय ने वेढे रक्खा है। इसमें सघन वायु है और इसे तीसरे तनुवातवलय ने बेड़ रक्खा है, जो कि हल की वायु का पुंज है।

अर्थात् ऊपर मध्यलोक तक पहला वातवलय सात योजन का, दूसरा पाँच योजन का और तीसरा चार योजन का है। इस तरह तीनों वातवलय मध्यलोक तक सोलह योजन मोटे चले आये हैं मध्यलोक की बगलों में पहला पाँच योजन का, दूसरा चार का और तीसरा तीन योजन का है। तीनों मिलकर १२ योजन मोटे हैं। मध्यलोक से ऊपर पाँचवें ब्रह्मस्वर्ग तक घनोदधिवात सात योजन का घनवात पाँच योजन का और तनुवात चार योजन का है। तीनों मिलकर सोलह योजन मोटे हैं। आगे पाँचवें स्वर्ग से ऊपर लोक के अन्त तक पहला वातवलय पाँच योजन का, दूसरा चार का और तीसरा तीन योजन का है। तीनों बारह योजन के हैं। लोक के सिर पर चक्र के आकार घनोदधिवात की मोटाई दो कोस की घनवात की एक कोस की और तनुवात की पौने सोलहसौ धनुष की है। इन १५७५ धनुष के पन्द्रहसौ भाग करने से अन्त का जो एक भाग रहता है, उसमें उत्कृष्ट^{४३} अवगाहना के धारण करनेवाले अनन्त सिद्धों का निवास है।

तीन लोक ११२ पटलों का वर्णन।

छप्पय

एक तीन पन सात, और नव ग्यार तेर जिय।
 इकतिस सात सु चारि, दोय इक एक तीनि तिय॥
 तीनि तीनि अरु तीनि एक, इक पटल बताए।
 इक सौ बारै सरब, बीस थानकके गाए॥
 सब सात नरक आठौं जुगल, त्रय ग्रीवक द्वय उत्तरे
 उनचास नरक त्रेसठ सुरग, धन दोनौं समकितभरे।१६॥

अर्थ— सातवें नरक में १, छठे में ३, पाँचवें में ५, चौथे में ७, तीसरे में ९, दूसरे में ११ और पहले में १३ पटल^{४४} हैं। इस तरह सातों नरकों में ४९ पटल हैं। स्वर्गों के पहले जुगल में अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्ग में ३१, दूसरे सानत्कुमार माहेन्द्र में ७, तीसरे ब्रह्म ब्रह्मोत्तर में ४, चौथे लांतव कापिष्ठ में २, पाँचवें शुक्र महाशुक्र में? छठे सतार सहस्रार में १, सातवें आनत प्रणत में ३ और आठवें आरण अच्युत जुगल में तीन पटल हैं। तीनों प्रैवेयिकों में अर्थात् ऊर्ध्व मध्य और अधो प्रैवेयिक में तीन तीन मिलकर ९ पटल हैं। नौ अनुदिशों में १

^{४३} पौने सोलहसौ में १५०० का भाग देने से १/१/२० धनुष होते हैं। यह धनुष प्रमाणांगुल से है और सिद्धों की अवगाहना उत्सेधंगुल से है। इससे इसमें ५०० का गुणा करने से ५२५ धनुष होते हैं। यही सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना है।

^{४४} जिन विमानों का ऊपरी भाग एक समतल में पाया जाता है, वे विमान एक पटल के कहलाते हैं। प्रत्येक पटल के मध्य के विमान को इंद्रक, चारों दिशाओं में जो पंक्ति रूप विमान हैं, उन्हें श्रेणीबद्ध और जो श्रेणियों के बीच में फुटकर हैं, उन्हें प्रकीर्णक विमान कहते हैं।

और पाँच अनुत्तर विमानों में १ पटल हैं इस तरह ६३ पटल स्वर्गों के हैं। सब मिलाकर नरकों और स्वर्गों के ११२ पटल हुए। इन दोनों में अर्थात् स्वर्गों में जो सम्यक्तव सहित जीव हैं, वे धन्य हैं।

छहों संहननवाले जीव मरकर कहाँ कहाँ उत्पन्न होते हैं?

छहों तीसरे जाहिं; पाँच चौथे पंचम लग।
चर संहनन छठे, एक सातवाँ नरक मग॥
छहों आठ में सुरग, पाँच बारम सुर जावैं।
चर सोल में लीक, तीन नौ ग्रीवक पावैं॥
छोनौ संहनन नउत्तरै, एक पंच पंचोत्तरे।
इक चरमशरीरी सिव लहै, बंदौ जैनवचन खरे।१७॥

अर्थ— वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये छह संहनन^{४५} हैं। इन छहों संहननवाले जीव मरकर यदि नरकों को जावें, तो पहले नरक से तीसरे नरक तक जाते हैं। असंप्राप्तसृपाटिक को छोड़कर शेष पाँच संहननवाले चौथे और पाँचवें नरक तक जाते हैं। असंप्राप्तासृपाटिकवाले तीसरे नरक से आगे नहीं जाते हैं। कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक को छोड़कर चार संहननवाले छठे नरकतक जाते हैं। कीलकवाले पाँचवें से आगे नहीं जाते हैं। एक वज्रवृषभ नाराचवाले सातवें नरकतक जाते हैं। शेष पाँचवाले सातवें नरक को नहीं जाते हैं। इसी प्रकार यदि इन छहों संहननोंवाले जीव मरकर स्वर्ग को जावें, तो आठवें स्वर्ग तक जाते हैं। असंप्राप्तासृपाटिक को छोड़कर शेष पाँच बारहवें स्वर्ग तक जाते हैं। असं. वाले आठवें से ऊपर नहीं जा सकते हैं। असं. और कीलक को छोड़कर बाकी चार सोलहवें स्वर्गतक जाते हैं। कीलकवाले बारहवें से ऊपर नहीं जा सकते हैं। नाराच वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराच इन तीन संहननवाले नौग्रेवैयिक तक जाते हैं। अर्धनाराचवाले सोलहवें से ऊपर नहीं जा सकते हैं। वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराच वाले अनुदिश विमानों तक जाते हैं नाराचवाले नौग्रेवैयिक के ऊपर नहीं जा सकते। एक वृषभनाराच संहननवाले पाँच अनुत्तरों तक जाते हैं। वज्रनाराचवाला अनुदिश विमानों के ऊपर नहीं जा सकता। जो चरमशरीरी होता है अर्थात् जिसे उसी भव में मोक्ष प्राप्त होना होता है, उसका

⁴⁵ हड्डियों के एक प्रकार के बंधन को संहनन कहते हैं। जिसकी हड्डियाँ, वेष्टन और कीलियाँ वज्र की हों, वह वज्रनाराचसंहननवाला है। जिसकी हड्डियाँ वेष्टन और कीली सहित हों, वह नाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डियों की संधियाँ आधी कीलित हों, वह अर्ध नाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डियाँ परस्पर कीलित हों, वह कीलित संहननवाला है और जिसकी हड्डियाँ जुदी जुदी हों, नसों से बँधी हों— परस्पर कीलित न हों, वह असंप्राप्तासृपाटिका संहननवाला है।

वज्रवृषभनाराच संहनन ही होता है। ये सत्य वचन जिन भगवान् के कहे हुए हैं। इनकी वन्दना करता हूँ।

छह कालों और चौदह गुणस्थानों में कौन कौन संहनन होते हैं?

प्रथम दुतिय अरु तृतिय काल मैं पहिला जानौ।
चौथे षटसंहनन, पंचमें तीन बखानौ॥
कर्मभूमि तिय तीन, एक छट्टे के माहीं।
विकल चतुष्कै एक, एक इंद्रिकै नाहीं॥
षट कहे सात गुणथान लग, तीन इग्यारै लौं लहे।
इकखिपक श्रेणि गुण तेरहैं, धन जिनवाणी मैं कहे॥१८॥

अर्थ— पहले^{४६} दूसरे और तीसरे काल में पहला अर्थात् वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है। चौथे काल में छहों संहनन के धारण करनेवाले जीव होते हैं। पाँचवें काल में अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक इन तीन संहननोंवाले होते हैं। कर्मभूमि की स्त्रियों के भी ये ही तीन संहनन होते हैं। छट्टे काल में केवल एक असंप्राप्तासृपाटिक संहनन ही होता है, अन्य पाँच नहीं। विकल चतुष्क जीवों के अर्थात् दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवों के भी यही असंप्राप्तासृपाटिक संहनन होता है। एकइंद्री जीवों के कोई भी संहनन नहीं होता, अर्थात् उनके हड्डियाँ कीली वेष्टनादि होती ही नहीं हैं। ये छहों संहनन सातवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इससे यह ध्वनित होता है कि, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये तीन संहनन सातवें गुणस्थान से ऊपर नहीं पाये जाते, वज्रनाराच और नाराच ग्यारहवें गुणस्थान से ऊपर नहीं पाये जाते और पहले संहनन को छोड़कर अन्य पाँच संहननोंवा क्षपकश्रेणी नहीं चढ सकता। ऐसा जिनवाणी में कहा है। यह जिनवाणी धन्य है।

चौबीसों तीर्थकरों के बीच का अन्तराल समय।

सवैया इकतीसा।

पचास तीस दस नौ किरोर लाख नब्बै नौ,
सहसकोर नौसै कोर नब्बै नौ कोर है।
सौ सागर वर्ष लाख छयासठ सहस छबीस,

⁴⁶ सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमासुषमा, दुःषमा और दुःषमादुःषमा इसप्रकार छह कालों के नाम हैं। पहिला काल चार कोटाकोटि सागर वर्षों का होता है, दूसरा तीन कोटाकोटि सागर का तीसरा दो कोटाकोटि सागर का, चौथा ४२००० वर्षक्रम एक कोटाकोटि सागर का, पाँचवाँ इक्कीस हजार वर्ष का और छट्टा भी इक्कीस हजार वर्ष का होता है।

घाट कोर सागर चौवन तीस और है॥
नव चारि तीनि घाट पौन पल्य अर्ध पाव,
घाट लाखौं लाख वर्ष लाखौं लाख जोर है।
चौवन छ पाँच लाख सहस पौनै चौरासी,
पाव, अंतराजिनेस गावै निसि भोर है।१९॥

अर्थ— आदिनाथ भगवान् के मोक्ष जाने के पश्चात् पचास लाख करोड़ सागर वर्ष में अजितनाथ तीर्थकर का जन्म हुआ। उनके मोक्ष जाने के तीस लाख कोटि सागर वर्ष पीछे सम्भवनाथ तीर्थकर का उदय हुआ। उनके निर्वाण के दश लाख कोटि सागर वर्ष पीछे अभिनन्दनाथ का जन्म, उनके निर्वाण के नौ लाख कोटि सागर वर्ष पीछे सुमतिनाथ का जन्म, उनके निर्वाण के नब्बै हजार कोटि सागर वर्ष पीछे पद्मप्रभ का जन्म, उनके निर्वाण के नौसौ कोटि सागर वर्ष पीछे चन्द्रप्रभ का जन्म, उनके मोक्ष जाने के नब्बै कोटि सागर वर्ष पीछे पुष्पदन्त का जन्म, उनके मुक्त होने के नौ कोटि सागर पीछे शीतलनाथ का जन्म, उनके सिद्ध होने के छयासठ लाख छब्बीस हजार एकसौ सागर वर्ष घाटि एक करोड सागर वर्ष पीछे अर्थात् ३३७९०० सागर वर्ष पीछे श्रेयांशनाथ का जन्म, उनके निर्वाण के चौवन सागर पीछे वासुपूज्य का जन्म, उनके निर्वाण के तीस सागर पीछे विमलनाथ का जन्म, उनके मोक्ष जाने के नौ सागर पीछे अनन्तनाथ का जन्म, उनके निर्वाण के पौनपल्य घाटि तीन सागर पीछे शान्तिनाथ का जन्म, उनके मुक्त होने के अर्ध पल्य वर्ष पीछे कुंथुनाथ का जन्म, उनके मोक्ष के हजार कोटि वर्ष घाटि पावपल्य पीछे अरनाथ का जन्म, उनके मोक्ष के हजार कोटि वर्ष पीछे मल्लिनाथ का जन्म उनके मुक्त होने के चौवन लाख वर्ष पीछे मुनिसुव्रत का जन्म, उनके निर्वाण के छह लाख वर्ष पीछे नेमिनाथ का जन्म, उनके मोक्ष जाने के पौनै चौरासी हजार वर्ष पीछे पार्श्वनाथ का जन्म और उनके निर्वाण के पाव हजार अर्थात् ढाई सौ वर्ष पीछे महावीर भगवान् का जन्म हुआ। (जिस समय महावीर भगवान् का मोक्ष हुआ, उस समय चौथे काल के तीन वर्ष साढे आठ महीना बाकी थे।) तीर्थकरों के इन अन्तराय समयों का शाम सबेरे स्मरण करना चाहिए।

कर्मों की १४८ प्रकृतियाँ कौन कौन गुणस्थानों में क्षय होती हैं?

छप्पय

सात प्रकृतिकौ घात, ठीक सातम गुणथानै।
तीनि आव नहिं होय, नवम छत्तीसौं भानै॥
दसमै लोभ विदार, बारहैं सोल मिटावै।

चौदहमेंके अंत, बहत्तर तेर खिपावै॥
 इमि तोर करम अड़ताल सौ,
 मुकतिमाहिं सुख करत हैं।
 प्रभु हमहिं बुलावौ अपढिग,
 हम हू पाँयनि परत हैं॥२०॥

अर्थ— यह जीव अनन्तानुबंधी^{४७} क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, मिश्र मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन सात प्रकृतियों का क्षय चौथे से सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक करता है अर्थात् क्षायक सम्यग्दृष्टी जीव इन सात प्रकृतियों की सत्ता सातवें गुणस्थान से आगे नहीं रहती। अप्रमत्त गुणस्थान के दो भेद होते हैं— एक स्वस्थान अप्रमत्त और दूसरा सातिशय अप्रमत्त सातिशय अप्रमत्त वह कहलाता है जो श्रेणी चढ़ने के सन्मुख होता है। इस मोक्षगामी जीव के नरकायु तिर्यचायु और देवायु की सत्ता नहीं होती है। नव वें गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों का क्षय करता है (देखो कवित्त ८२), दशवें में सूक्ष्मलोभ को नष्ट करता है, बारहवें गुणस्थान में ज्ञानावरणी की ५, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल, दर्शनावरणी की ६, चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा और प्रचला और अन्तराय की ५, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इस तरह सब मिलाकर १६ प्रकृतियों का क्षय करता है। चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जब दो समय रह जाते हैं, तब पहले समय में ७२ और दूसरे समय में १३ प्रकृतियों को खिपाता है। इस तरह सब मिलाकर १४८ कर्मों के जाल को तोड़कर जीव मुक्त हो जाता है और वहाँ अनन्त सुखों को भोगता है। हे प्रभो, मैं आपके पैरों में पड़ता हूँ, आप मुझे अपने समीप बुला लें अर्थात् अपने समान मुझे भी कर्मों से रहित कर दें।

मानुषोत्तर पर्वत का परिमाण।

कवित्त (३१ मात्रा)

मानुषोत्तर पर्वत चौराई, भूपर एक सहस बाईस।
 मध्य सात सौ तेइस जोजन, ऊपर चार सतक चौईस
 सतरहसौ इकईस ऊँचाई, जड़ चार सौ पाव अरु तीस।
 रिजु विमान किहि भाँति मिल्यौ है, जोजन लाख कह्यौ
 जगदीसा॥२१॥

⁴⁷ यह कथन क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीव की अपेक्षा से है। उपशमश्रेणीवाले उपशमसम्यक्त्वकी के इन प्रकृतियों की सत्ता ११ वें गुणस्थान तक रहती है।

अर्थ— मानुषोत्तर पर्वत जो कि अढाई द्वीप अर्थात् मनुष्य क्षेत्र के बाहिर है और जिसके पहले पहले मनुष्यों का निवास है, उसका विस्तार इस कवित्त में बतलाया है। इस पर्वत की चौड़ाई पृथ्वी पर १०२२ योजन है। ऊपर की चौड़ाई क्रम से कम होती गई है। अर्थात् उसकी चौड़ाई मध्य में ७२३ योजन है और ऊपर ४२४ योजन है। ऊँचाई इस पर्वत की १७२१ योजन है और जड इसकी जो कि चित्रापृथ्वी में है ४३०¹/₄ योजन की है। बहुत से लोग समझते हैं कि इस पर्वत से स्वर्गों का ऋजुविमान मिला होगा, इसलिए इसके उस पार लोग नहीं जा सकते होंगे; परन्तु यह ठीक नहीं है। यह कैसे मिल सकता है? क्योंकि ऋजुविमान तो एक लाख योजन ऊँचा है और यह केवल १७२१ योजन ऊँचा है।

देव देवी संभोग

दोय सुरगमै काय भोग है, दोय सुरगमै फरस निहार
 चार सुरगमै रूप निहारे, चार सुरगमै सबद विचार॥
 चार सुरगमै मनकौ विकल्प,
 आगै सहज सील निरधार।
 अहमिंदर सब महा सुखी हैं,
 वंदौ सिद्ध सुखी अविकार॥२२॥

अर्थ— पहले दो स्वर्गों में अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्ग में कायभोग है अर्थात् इन स्वर्गों के देवों को जब काम भोग की इच्छा होती है, तब वे स्त्री पुरुषों के समान ही संभोग करते हैं। आगे सानत्कुमार और माहेन्द्र इन दो स्वर्गों में देव देवियों के परस्पर स्पर्श मात्र से संभोग की इच्छा पूर्ण हो जाती है। इनसे ऊपर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ठ इन चार स्वर्गों में परस्पर रूप देखने मात्र से कामवासना की तृप्ति हो जाती है। आगे के शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार इन चार स्वर्गों में कामरूप शब्दों के श्रवणमात्र से इच्छा मिट जाती है और आगे के आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चार स्वर्गों में मन में कामचिन्तवन करने मात्र से इच्छा की निवृत्ति हो जाती है इन सोलह स्वर्गों के आगे प्रैवेयिक अनुदिशि आदि में देवियाँ नहीं हैं और कषाय की बहुत मन्दता है, इसलिए वहाँ के देव सहज शीलवंत वा ब्रह्मचारी हैं और जो अहमिंद्र हैं; उनमें पारिषदादि दश भेद छोटे बड़ेपन के नहीं हैं। वे बड़े सुखी हैं। उनसे अधिक सुखी सिद्ध भगवान् हैं, जो कि विकार रहित हैं। उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

चौबीसौं जिनराय—पाय बंदौ सुखदायक।
 कामदेव चौबीस, ईस सुमरौं सिवनायक॥
 भरत आदि चक्रीस, दुदस बहु सुरनरस्वामी ।
 नरद पदम मुरारि, और प्रतिहरि जगनामी॥
 जिनमात तात पुरुष, संकर उत्तम जियंधरौं।
 कछु तदभव कछु भवं धरत, मुकतिरूप बंदन करौं॥२३॥

अर्थ— सुख के देनेवाले २४ तीर्थकरों के चरणों की वन्दना करता हूँ। २४ कामदेवों का स्मरण करता हूँ, जो उसी भव में मोक्ष के नायक अर्थात् सिद्ध हो गये हैं भरतादि १२ चक्रवर्ती जो अगणित मनुष्य और देवों के स्वामी थे, तथा ९ नारद, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, २४ तीर्थकरों की माताएँ, २४ पिता, १४ कुलकर और ११ रुद्र (महादेव) ये सब १६९ उत्तम जीव हुए हैं। इनमें कुद तद्भवमोक्षगामी हैं अर्थात् उसी भव से मुक्त होनेवाले हैं और कुछ ऐसे हैं, जो थोड़े से भव धारण करके मोक्ष जावेंगे। इसलिए इन मुक्तरूप आत्माओं की वन्दना करता हूँ। (इनमें से जिनमाता पिता, कुलकर, बलभद्र, रुद्र और कामदेव छोड़ देने से ६३ शलाका पुरुष कहलाते हैं। १६९ में कुछ तीर्थकर, चक्रवर्ती और कामदेव पदवी के भी धारक हुए हैं।)

एकसौ अड़तालीस कर्मप्रकृतियाँ।

ग्यानावरनी पाँच, दर्सनावरनी नौ विध।
 दोय वेदनी जान, मोहिनी आठ वीस निध॥
 आव चार परकार, नाम की प्रकृति तिरानौ।
 तथा एकसौ तीन, गोत दो भेद प्रमानौ॥
 कहि अंतराय की पाँच सब, सौ अड़तालिस जानिए।
 इमि आठकरम अड़तालिसौ, भिन्नरूप निज मानिए॥२४॥

अर्थ— ज्ञानावरणी की ५, दर्शनावरणी की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नाम की ९३ अथवा^{४८} १०३, गौत्र की २ और अन्तराय की ५ इसप्रकार आठों कर्म की सब मिलाकर १४८ प्रकृतियाँ हैं। ये १४८ भेद जड़रूप कर्मों के हैं। अपने निजरूप

⁴⁸ नाम कर्म की ९३ प्रकृतियों में शरीर के ५ भेद अभेद विविक्षा से माने हैं। जहाँ १०३ भेद माने हैं, वहाँ शरीर के संयुक्त भेदों की अपेक्षा से १५ भेद माने हैं।

को इनसे जुदा श्रद्धान करना चाहिए। (१४८ में से १०१ प्रकृति तो चार अघातिया कर्मों की हैं और ४७ चार घातिया कर्मों की हैं।)

**भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, पुद्गलविपाकी और
जीवविपाकी प्रकृतियाँ
सवैया इकतीसा।**

वरनादिक बीस संस्थान संहनन बारे,
बंधन संघात देह अंगोपांग ठारै हैं।
अगुरु लघु आतप उपघात परघात,
निरमान परतेक साधारन सारै हैं॥
अथिर उदोत थिर सुभ असुभ बासठ,
पुद्गलविपाकी भौविपाकी आव चारै हैं।
क्षेत्र की विपाकी चार आनुपूर्वी अठत्तर,
बांकी जीव की विपाकी धरै अघ टारै हैं॥२५॥

अर्थ— वर्ण ५, गंध २, स्पर्श ८ और रस ५ इस तरह वर्णादिक २० प्रकृतियाँ; संस्थान ६ और संहनन ६ इस तरह दोनों १२; बंधन ५, संघात ५, शरीर ५ और अंगोपांग ३, इस तरह चारों १८; अगुरुलघु १, आतप १, उपघात १, परघात १, निर्माण १, प्रत्येक १, साधारण १, अथिर १, उद्योत १, स्थिर १, शुभ १ और अशुभ १ इस तरह १२; कुल मिलाकर ६२ प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं। पुद्गल में उदय आती हैं, अर्थात् पुद्गल में इनका फल होता है, इसलिए इन्हें पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ कहते हैं। नरक आयु, तिर्यच आयु, मनुष्य आयु और देव आयु ये चार प्रकृतियाँ भवविपाकी हैं। इनका विपाक वा फल भव में होता है— इनके फल से जीव संसार में रुलता है। नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी ये चार प्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं। इनके फल से विग्रह गति में अर्थात् भव धारण करने के पहले जीव का आकार पहले सरीखा बना रहता है। इनका विपाक क्षेत्र में अर्थात् विग्रहगतिरूप क्षेत्र में अथवा आत्मक्षेत्र में होता है। ज्ञानावरणी की ५, गोत्र की २, वेदनी की २, नाम कर्म की २७ इस तरह ७८ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं। पुद्गलविपाकी भवविपाकी आदि सब मिलाकर १४८ प्रकृतियाँ हो गईं। इनका श्रद्धान करने से जीव पाप से मुक्त होता है।

विशेष— नाम कर्म की ९३ प्रकृतियाँ हैं, जिनमें एकेंद्री, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, पंचेन्द्रिय, नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, वादर, सूक्ष्म, दुस्वर, पर्याप्त, अपर्याप्त, आदेय, अनादेय, सुभग, दुर्भग, सुस्वर,

यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, श्वासोच्छ्वास, और तीर्थकर, ये २७ प्रकृतियाँ जीवपिपाकी हैं, ४ क्षेत्रविपाकी हैं और बाकी ६२ पुद्गलविपाकी हैं।

सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियाँ।

केवल दरस ग्यान आचरणी ताकी दोय,
मिथ्यात समै मिथ्यात निद्रा पाँच भानिए।
तीनों चौकरी की बारै सर्वघाती इकईस,
संज्वलन चार नव नोकषाय मानिये॥
ग्यानावरणी की चार दर्शनावरणी तीन,
अंतराय पाँच सम्यक मिथ्यात ठानिये।
देसघाती की छबीस बाकी एकसौ अघाती,
तीनों घातीकर्म घात आप सुद्ध जानिये॥२६॥

अर्थ— केवलज्ञानावरणी, केवलदर्शनावरणी, मिथ्यात्व, सम्यकमिथ्यात्व (मिश्रमिथ्यात्व) निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धिनिद्रा ये पाँच निद्रा, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, ये तीन चौकड़ी के बारह कषाय; इस तरह इक्कीस सर्वघाती प्रकृतियाँ हैं। ये आत्मगुण को सर्वथा घातनेवाली हैं, इस लिए सर्वघाती कहलाती हैं और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार संज्वलन कषाय; हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये नौ नोकषाय; मतिज्ञानावरणी, श्रुतज्ञानावरणी, अवधिज्ञानावरणी, मनः पर्ययज्ञानावरणी, ये चार ज्ञानावरणी; चक्षुदर्शनावरणी, अचक्षुदर्शनावरणी, अवधि दर्शनावरणी, ये तीन दर्शनावरणी; दानान्तराय, लाभान्तराय भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय ये पाँच अन्तराय; और एक सम्यक्तव इस तरह २६ देशघाती प्रकृतियाँ हैं। ये आत्मा के गुणों को एकदेश घात करती हैं—सर्वथा घात नहीं करती, इसलिए देशघाती कहलाती हैं और १०१ प्रकृति अघातिया कर्मों की हैं। इसतरह सब मिलाकर २१+२६+१०१=१४८ प्रकृति हैं। इन तीनों प्रकार के कर्मों को नाश करके आत्मा शुद्ध होता है— मोक्ष को प्राप्त होता है।

पाँच त्रिभंगी (बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता, विशेष सत्ता)।

सवैया इकतीसा।

वर्णादिक च्यार सोलै नाहिं देह आदि पंच,

दस नाहिं मिथ्या एक दोय बंध नाहीं है।
 सोलै दस दोय बिना बंध एक सतवीस,
 मिथ्या उदै तीन दोय बढैं उदै पाहीं है॥
 उदय औ उदीरणा एक सत बाइसकी,
 सत्ता सौ अड़ताल विसेस सत्ता ठाहीं है।
 मिथ्या गुण सौ छियाल काहू सत सत्ताईस,
 पाँचौं तिरभंगीसौ असंगी आपमाहीं है॥२७॥

अर्थ— वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के जो २० भेद हैं, वे सामान्य की अपेक्षा से स्पर्श, रस, गंध और वर्ण इन चार में गर्भित हो जाते हैं, इसलिए १६ तो ये कम हुए। और ५ शरीर, ५ बंधन, ५ संघात ये १५ प्रकृतियाँ अविनाभावी हैं। अर्थात् जहाँ एक शरीर का बंध होता है, वहाँ उस शरीर सम्बन्धी बंधन और संघात का भी बंध अवश्य होता है। इसलिए ५ शरीरप्रकृतियों में अविनाभाव सम्बन्ध से ५ बंधन और ५ संघात भी गर्भित हो जाते हैं। दर्शनमोह की ३ प्रकृतियाँ हैं, उनमें से १ मिथ्यात्वप्रकृति बंधयोग्य है, बाकी २ बंधयोग्य नहीं है। अर्थात् सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति का बंध नहीं होता है, किन्तु उपशमसम्यक्ती के मिथ्यात्व के तीन खण्ड हो जाते हैं। इस तरह सोलै दश दोय अर्थात् २८ हुई। इनको छोड़कर बाकी १२० प्रकृतियाँ बंधयोग्य हैं। और उदय में दर्शन मोहनी की तीनों प्रकृतियाँ जादा हुई। अर्थात् १२२ ही की उदीरणा (स्थिति पूरी किये बिना ही कर्मों का फल देकर झड़ना) होती है। नानाजीवों की अपेक्षा सत्त है। विशेष सत्ता किसी एक जीव की अपेक्षा से होती है। सो किसी एक जीव के मिथ्यात्वगुणस्थान में अधिक से अधिक १४६ प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है। किसी के १२७ की भी बतलाई है। हमारा आत्मा इन पाँचों ही त्रिभंगियों से जुदा निजसत्ता में विराजता है।

बंध, उदय और सत्ता

छप्पय

बंध एकसौ बीस, उदय सौ बाइस आवैं।
 सत्ता सौ अड़ताल, पाप की सौ कहलाघैं॥
 पुन्यप्रकृति अड़सट्ट, अठत्तर जीवविपाकी।
 बासठ देह—विपाकी, खेत भव चउचउ बाकी॥
 इकईस सरबघाती प्रकृति, देशघाति छब्बीस हैं।
 बाकी अघाति इक अधिकसत, भिन्न सिद्ध सिवईस
 हैं॥२८॥

अर्थ— आठों कर्मों की कुल १४८ प्रकृतियाँ हैं। इनमें से १२० प्रकृतियों का बंध होता है, १२२ उदय में आती हैं, सत्ता सबकी अर्थात् एकसौ अड़तालीसों प्रकृति की रहती है। पाप प्रकृतियाँ १०० हैं, पुण्य^{४९} प्रकृतियाँ ६८ हैं, जीवविपाकी ७८ हैं, देह वा पुद्गलविपाकी ६२ हैं, क्षेत्रविपाकी ४ हैं, और भवविपाकी भी ४ हैं। सर्वघाती २१, देशघाती २६ और अघाती प्रकृतियाँ १०१ हैं। आत्मा इन सबसे भिन्न शिवईश अर्थात् मोक्ष का स्वामी है और सिद्ध है।

पाप प्रकृतियों के नाम।

सवैया इकतीसा।

घाति सैतालीस दुक्ख नीच नरकायु पंच,
संस्थान संहनन बर्न रस मानिए।
नर पसु गति आनुपूर्वी फरस आठ,
गंध दोय इंद्री चार बुरीचाल ठानिए॥
अथिर अपर्यापत सूच्छम औ साधारण,
उपघात थावर असुभ परवांनिए।
दुर्भग दुस्वर और अनादेय अजस रूप,
पाप प्रकृति सौ भेद त्यागि धर्म जानिए॥२९॥

अर्थ— घाति प्रकृति ४७, दुःख अर्थात् असाता वेदनीय १, नीच गोत्र १, नरकायु १, संस्थान (समचतुरस्र को छोड़कर) अन्त के ५, संहनन (वज्रवृषभनाराच को छोड़कर) अन्त के ५, संहनन (वज्रवृषभनाराच को छोड़कर) अंत के ५, वर्ण ५, रस ५, नरकगति १, पशुगति १, नरकगत्यानुपूर्वी १, पशुगत्यानुपूर्वी १, स्पर्श ८, गंध २, इंद्री (पंचेन्द्री को छोड़कर) ४, अप्रशस्तविहायोगति १, अस्थिर १, अपर्याप्त १, सूक्ष्म १, साधारण १, उपघात १, स्थावर १, दुर्भग १, दुःस्वर १, अनादेय १, और अजस १ ये सब मिलाकर १०० पाप प्रकृतियाँ हैं। इनको त्याग कर धर्म का स्वरूप जानना चाहिए।

पुण्य प्रकृतियों के नाम

सुर नर पसु आव साता ऊँच भली चाल,
सुर नर आनुपूर्वि निरमान स्वास है।
बंधन संघात देह वर्ण रस पंच त्रस,

⁴⁹ पाप और पुण्य प्रकृतियाँ मिलाकर १६८ हो गईं और कुल प्रकृतियाँ १४८ ही हैं। फिर ये २० ज्यादा कैसे हो गईं? इसका समाधान यह है कि, ५ वर्ण, ५ रस, २ गंध, और ८ स्पर्श, ये २० प्रकृतियाँ पापरूपी भी होती हैं और पुण्यरूप भी होती हैं, इसलिए गिनी गईं हैं

तीन अंग सुभ दोय गंध आठ फास है॥
 अगुरुलघु पंचेन्द्री संस्थान संहनन,
 वादर प्रतेक थिर पर्याप्त जस है।
 आतप उद्योत परघात सुस्वर सुभग,
 आदेय तीर्थकरकौ बंदौ अघ नास है॥३०॥

अर्थ— देवआयु १, मनुष्य आयु १, तिर्यच आयु १, सातावेदनी १, ऊँच गोत्र १, प्रशस्त विहायोगति १, देवगति १, मनुष्यगति १, देवगत्यानुपूर्वी १, मनुष्यगत्यानुवर्ती १, निर्माण १, श्वासोच्छ्वास १, बंधन ५, संघात ५, शरीर (औदारिकादि) ५, वर्ण ५, रस ५, त्रस १, औदारिकअंगोपांग १, वैक्रियक अंगोपांग १, आहारक अंगोपांग १, शुभ १, गंध २, स्पर्श ८, अगुरुलघु १, पंचेन्द्री १, समचतुरस्रसंस्थान १, वज्रवृषभनाराचसंहनन १, वादर १, प्रत्येक १, स्थिर १, पर्याप्त १, यश १, आतप १, उद्योत १, परघात १, सुस्वर १, सुभग १, आदेय १ और तीर्थकर १ ये सब ६८ पुण्यप्रकृतियाँ हैं। समस्तपुण्य प्रकृतियों में तीर्थकरप्रकृति श्रेष्ठ है— पापों की क्षय करनेवाली है, इसलिए मैं उसकी वन्दना करता हूँ।

जिनमत की श्रद्धा।

छप्पय

तिहूँ काल षट दरब, पदारथ नव तुम भाखे।
 सात तत्त्व पंचास्तिकाय, षटकायिक राखे॥
 आठ कर्म गुन आठ, भेद लेस्या षट जानै।
 पंच पंच व्रत समिति, चरित गति ग्यान बखानै॥
 सरथै प्रतीत रुचि मन धरै,
 मुकतिमूल समकित यही।
 पद नमौ जोर कर सीस धर,
 धन सर्वग इह विध कही॥३१॥

अर्थ— तीन काल— भूत, वर्तमान, भविष्यत्, छहद्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पंचास्तिकाय, कालद्रव्य को छोड़कर बाकी के पूर्वोक्त पांचद्रव्य, सप्त तत्त्व जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, नव पदार्थ, पूर्वोक्त साततत्त्व और पुण्य, पाप, षटकाय, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय (द्वीन्द्रियादि), आठकर्म—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, मोहनी, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय, आठ गुण (सम्यक्तव के)— निःशंका, निःकांक्षा, निर्विचिकित्सिता, अमूढदृष्टी, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना, छहलेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल,

पाँच व्रत— अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग, पाँच समिति— ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपणा, प्रतिष्ठापना, पाँच चारित्र— सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, पाँच गति— नरक, देव, मनुष्य, तिर्यच, मोक्ष, पाँच ज्ञान— मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इन सब बातों पर जो श्रद्धान करना, प्रतीत करना और मन में रुचि धारण करना है, वही मुक्ति का मूल सम्यग्दर्शन है। उन सर्वज्ञ देव के चरणों को मैं मस्तक पर हाथ रखके नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने ये सब बाते बतलाई हैं।

१९९॥ लाख कुलकोड़ का ब्योरा।

सवैया इकतीसा।

पृथ्वीकाय बीस दोय जल सात तेज तीनि,
वायु सात तरु बीस आठ परमानिए।
वे ते चउ इंद्रि सात आठ नव खग बारै,
जलचर साढ़े बारै चौपे दस जानिए॥
सरीसृप नव नारकी पचीस नर चौदै,
देवता छबीस लाख कुल कोरि मानिए।
दोय कोराकोरीमाहिं आध लाख कोरि नाहिं,
सबकौं निहारिकै दयाल भाव आनिए॥३२॥

अर्थ— पृथ्वीकाय के २२ लाख, जलकाय के ७ लाख, तेजकाय के ३ लाख, वायुकाय के ७ लाख, तरुकाय अर्थात् वनस्पतिकाय के ८ लाख, दोइंद्रिय के ७ लाख, तेइंद्रिय के ८ लाख, चौ इंद्रिय के ९ लाख, पक्षियों के १२ लाख, जलचारी जीवों के १२॥ लाख, चौपायों के १० लाख, सरीसृप जीवों के अर्थात् जमीन पर घिसट कर चलनेवाले साँप आदि जीवों के ९ लाख, नारकियों के २५ लाख, मनुष्यों के १४ लाख और देवों के २६ लाख कम अर्थात् १९९॥ लाख करोड़ होता है। इन सबको जानकर इन पर दयाभाव रखना चाहिए।

स्पर्श रस गंध वर्णादि के भेद से जीवों के शरीर के जो भेद होते हैं, उन्हें कुल कहते हैं। सम्पूर्ण जीवों के १९९॥ लाख करोड़ भेद हो सकते हैं। योनिस्थानों की अपेक्षा कुल अधिक होते हैं, इसका कारण यह है कि एक योनि से उत्पन्न हुए जीवों के भी वर्णादि के भेद से अनेक भेद हो सकते हैं।

अंकगणना के ग्यारह भेद

छप्पय

इस कम चालीस उदीरना, उदय वियालिस मानिए।
यह तेरहवें गुणस्थान में, सात त्रिभंगी जानिए॥३४॥

अर्थ— तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थान में सात त्रिभंगी होती हैं, सो इसप्रकार— सत्यमन, अनुभयमन, सत्यवचन, अनुभयवचन, औदारिककाय, औदारिक मिश्र और कार्माण ये सात आश्रवद्वार हैं और बंध एक साता वेदनीय का है और भाव इस गुणस्थान में १४ (ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य सम्यक्त्व, चारित्र, मनुष्यगति, असिद्धत्व, भव्यत्व, जीवत्व और लेश्या) होते हैं। ८५ प्रकृतियों की सत्ता रहती है। यह सत्ता जिनेश्वर भगवान् ने नाना जीवों की अपेक्षा चार प्रकार की कही है। अर्थात् किसी जीव के ८० प्रकृतियों की, (८५ में से आहारकचतुष्क और तीर्थकर प्रकृति छोड़कर), किसी के ८४ की (आहारक चतुष्क को छोड़कर) और किसी के ८५ प्रकृतियों की सत्ता रहती है, ३९ प्रकृतियों की उदीरणा होती है और ४२ प्रकृतियों का उदय होता है। इस तरह तेरहवें गुणस्थान में आश्रव, बंध, भाव, सामान्य सत्ता, विशेष सत्ता, उदीरणा और उदय से सात त्रिभंगी होती है।

बंधदशक छप्पय।

जीव करम मिलि बंध, देय रस तास उदै भनि।
उदीरना उपाय, रहैं जब लौ सत्ता गनि॥
उतकरसन थिति बढैं घटैं अपकरसन कहियत।
संकरमन पररूप, उदीरन बिन उपसम मत॥
संक्रमण उदीरन बिन निधत,
घट बढ उदरन संक्रमन।
चहुँ बिना निकांचित बंध दस,
भिन्न आपपद जानिमन॥३५॥

अर्थ— जीव और कर्मों के मिलने को बंध कहते हैं। अपनी स्थिति को पूरी करके कर्मों के फल देने को उदय कहते हैं। तप आदि निमित्तों से स्थिति पूरी किये बिना ही कर्मों के फल देने को उदीरणा कहते हैं। जब तक कर्म आत्मा के साथ सम्बन्ध रखते हैं, तब तक उनकी सत्ता कहलाती है। जिस कर्म की जितनी स्थिति बाँधी हो, उतनी से अधिक हो जाने को उत्कर्षण कहते हैं और घटजाने को अपकर्षण कहते हैं। किसी कर्म के सजातीय एक भेद से दूसरे भेदरूप हो जाने को संक्रमण कहते हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भाव के निमित्त कर्म की शक्ति के प्रगट न होने को उपशम कहते हैं अर्थात् जब कर्मों की उदीरणा

नहीं होती है और उदय भी नहीं होता है, तब उपशम होता है। संक्रमण और उदीरण न होने को अर्थात् जो कर्म प्रकृति बांधी हों, वे न दूसरे रूप हों और न उनकी उदीरणा हो, उसे निधत्त कहते हैं और जिसमें स्थिति का घटना बढ़ना पररूप होना और उदीर्ण होना ये चारों बातें न हों, उसे निकांचित कहते हैं। इस तरह बंध के दश प्रकार हैं। हे मन तुझे आत्मा का पद इनसे सर्वथा भिन्न समझना चाहिए।

तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या।

सवैया तेईसा (मत्तगयन्द)।

सात किरोर बहत्तर लाख,
पतालविषै जिनमन्दिर जानै।
मध्यहि लोकमें चार सौ ठावन,
व्यंतर जोतिक के अधिकानै॥
लाख चौरासि हजार सतानवै,
तेइस ऊरध लोक बखानै।
एकेकमें प्रतिमा सत आठ,
नमै तिहुजोग त्रिकाल सयानै॥३६॥

अर्थ— पाताल में अर्थात् चित्रा पृथिवी के नीचे भवनवासी देवों के भवनों में ७७२००००० अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं, मध्यलोक में अर्थात् जम्बूद्वीप से तेरहवें रुचक कुण्डलगिरि नाम के तेरहवें द्वीपतक के क्षेत्र में ४५८ जैन मंदिर हैं। व्यन्तरदेवों के और ज्योतिषीदेवों के भवनों में असंख्यात चैत्यालय हैं और ऊर्ध्वलोक में अर्थात् सौधर्म स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धितक ८४९७०२३ चैत्यालय हैं। इन सब मन्दिरों या चैत्यालयों में एक एक में एक सौ आठ प्रतिमाएँ हैं। उन्हें चतुर पुरुष मन वचन काय से तीनों समय नमस्कार करते हैं।

तीन कम नव कोटि मुनियों की संख्या।

पाँच किरोर तिरानवै लाख,
हजार अठानवै दोसै छ जानै।
जीव छठे गुणमै अध सातमें,
ग्यारसै छयानवै चार ठिकानै॥
आठ नवै दस बारहै चौदहै,
सौ उनतीस नवै परमानै।
तेरमै आठ हि लाख हजार,
अठानवै पाँचसै दोय बखानै॥३७॥

अर्थ— अढ़ाई द्वीप में एक काल में अधिक से अधिक इतने मुनि हो सकते हैं— छठे⁵¹ गुणस्थान में ५९३९८२०६, सातवें गुणस्थान में उससे आधे अर्थात् २९६९९१०३, आगे उपशमश्रेणी के आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें इन चार स्थानों में सब मिलाकर ११९६, अर्थात् प्रत्येक में २९९, और क्षपकश्रेणी के आठवें, नवें, दशवें, बारहवें तथा चौदहवें गुणस्थानों में मिलाकर २९९० अर्थात् प्रत्येक में ५९८ और तेरहवें गुणस्थान में ८९८५०२। सबका जोड़ ८९९९९९७ होता है। इससे अधिक मुनि एक काल में नहीं हो सकते।

अढ़ाईद्वीपका ज्योतिषमण्डल।

कवित्त (३१ मात्रा)।

एक चन्द्र इक सूर्य अठासी,
ग्रह अट्टाइस, नखत बखान।
छयासठ सहस पचत्तर नवसै,
कोड़ाकोड़ी तारे जान॥
इकसौ बत्तिस चंद इही विध,
ढाई द्वीपमध्य परवान।
सब चैत्यालय प्रतिमामण्डित,
बंदन करौं जोरि जुगपान॥३८॥

अर्थ— ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं— चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे। इनमें चन्द्र इन्द्र होता है और सूर्य प्रतीन्द्र होता है। एक चन्द्रमा का परिवार इसप्रकार है— १ सूर्य, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण। सो ढाई द्वीप में इसी प्रकार के परिवारवाले १३२ चन्द्रमा हैं। इन सब ज्योतिषियों के विमान जिन चैत्यालयों और जिन प्रतिमाओं सहित हैं। इसलिए मैं दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

आयुर्कर्म के बंध के नव भेद

आउ अंस पैसठ सौ इकसठ,
इसइस सौ सत्तासी जान।
सात सतक उनतीस दोय सो,
तेतालिस इक्यासी मान॥
सत्ताईस और नौ तीनों,

⁵¹ छठे गुणस्थान से पहले मुनि नहीं होते।

एक आठवाँ भेख बखान।
नौमी अंतकालमें बाँधै,
अगली गतिकी आउ निदान॥३९॥

अर्थ— जीव अपनी अगली आयु का बंध कब करता है, इसका खुलासा इस कवित्त में किया है— किसी जीव की आयु में यदि हम ६५६१ अंशों की कल्पना करें, तो इसके तीसरे हिस्से में अर्थात् जब २१८७ अंश आयु के शेष रह जावेंगे, तब वह आगामी भव की आयु को बाँधेगा। यदि उस समय नहीं बाँध सकेगा, तो २१८७ के तिहाई में अर्थात् ७२९ अंश शेष रहेंगे, तब बाँधेगा। यदि उस समय भी न बाँध सका, तो २४३ अंश शेष रहने पर बाँधेगा। और तब भी न बाँध सका तो त्रिभाग के ८१, २७, ९, ३ और १ आदि स्थानों में बाँधेगा। इस तरह आठ बार जो त्रिभाग हुए हैं, उनमें से किसी न किसी में आयु का बंध कर ही लेगा और यदि आठों त्रिभाग चूक जावेगा, तो अपनी आयु के अन्त समय में तो अवश्य ही अगली आयु बाँध लेगा। बिना अगली आयु का बंध किये कोई भी जीव वर्तमान आयु को नहीं छोड़ सकता है। और आयु कर्म का बंध त्रिभाग में या अन्त समय में होता है।

सत्तावन जीवसमास छप्पय

भूजल पावक वायु, नित्य ईतर साधारन।
सूच्छम वादर करत, होत द्वादस उच्चारन॥
सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठ मिलत चौदह परवानौ।
परज अपर्ज अलब्ध, गुनत ब्यालीस बखानौ॥
गुन वे ते चौ इंद्री त्रिविध, सर्व एक पंचास भन।
मनरहित सहित तिहुभेदसौ, सत्तावन धर दया मन॥४०॥

अर्थ— संक्षेप से जीवों के ५७ भेद होते हैं, वे इसप्रकार से, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, नित्यनिगोद और इतर निगोद। इन छहों में सूक्ष्म और वादर ये दो दो भेद होते हैं, इससे १२ भेद हुए। इनमें सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक ये दो वनस्पतिकाय के भेद और मिलाने से १४ हो गये। और इन सबमें पर्याप्त, अपर्याप्त (निवृत्यपर्याप्त), और अलब्धपर्याप्त (लब्धपर्याप्त) ये तीन तीन भेद होते हैं, इसलिए सब मिलाकर एकेन्द्रिय जीवों के ४२ भेद हुए। इनमें दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय के पर्याप्त,

अपर्याप्त, अलब्धपर्याप्त भेद मिलाने से ५१ हुए ओर पंचेन्द्री जीव संज्ञी असंज्ञी दो तरह के होते हैं और उन दोनों में पर्याप्त आदि भेद होते हैं। सो छह भेद पंचेन्द्रिय जीवों के हुए। सब मिलाकर एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों के ५७ भेद हुए। इन सब जीवों पर मन में दयाभाव रखना चाहिए।

आठानवै जीव समास।

सवैया इकतीसा।

इक्यावन थान जान थावर विकलत्रैके,
 गर्भज दो तीनि सनमूरछन गाए हैं।
 पाँचौं सैनी औ असैनी जल थल नभचारी,
 भोगभूमि भूचर खेचर दो दो पाए हैं॥
 दो दो नारकी सुदेव नौ विध मनुष्य बेव,
 भोगभू कुभोगभू मलेच्छभू बताए हैं।
 दोय दाये दोय तीनि आरजमैं राजत हैं,
 अठानवै दया करै साधु ते कहाए हैं॥४१॥

अर्थ— स्थावर और विकलत्रय (दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय) जीवों के ५१ भेद तो ४० वें पद्य में कह चुके हैं, उनमें पंचेन्द्रिय जीवों के ४७ भेद औ मिलाने से ९८ भेद हो जाते हैं। सो इसप्रकार से, गर्भज जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त (निवृत्ति अपर्याप्त) ये दो, सम्मूर्छन पंचेन्द्रियों के पर्याप्त, अपर्याप्त और अलब्धपर्याप्त ये तीन इस तरह पाँच, फिर दोनों के सेनी और असेनी भेद करने से हुए दश। ये दश दश भेद जलचारी और नभचारी पंचेन्द्रियों में भी होते हैं। सब तीस भेद कर्मभूमि के पंचेन्द्रिय जीवों के हुए। भोगभूमि में जलचर ओर सम्मूर्छन जीव नहीं होते हैं। केवल गर्भज थलचारी और नभचारी होते हैं और इन दोनों के पर्याप्त अपर्याप्त दो दो भेद होते हैं। इस तरह भोगभूमि के जीवों के चार भेद हुए। देव और नारकियों के भी पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से चार भेद होते हैं। मनुष्यों के नव भेद होते हैं— भोगभूमि, कुभोगभूमि और म्लेच्छखण्ड के मनुष्यों के पर्याप्त अपर्याप्त के प्रकार से ६ भेद और आर्यखण्ड के मनुष्यों के पर्याप्त अपर्याप्त अलब्धपर्याप्त ये तीन भेद। सब मिलाने से ९८ भेद हुए—
 स्थावर जीवों के..... ४२ भोगभूमि के थल नभ चारियों के ४ विकलत्रय के..... ९ देव नारकियों के..... ४ कर्मभूमिके जलचारियों के १० भोगकुभोग म्लेच्छ मनुष्यों के ६ कर्मभूमि के थलचारियोंके....१० आर्यखण्ड के मनुष्यों के.... ३ कर्मभूमि के नभचारियों के.....१०= ९८

इन सब जीवों पर जो दया करते हैं, वे ही साधु पुरुष हैं।

प्रमादों के भेद।

छप्पय

विकथारूप पचीस औस पनवीस कसायनि।
गुणतै छस्सै सवा, पाँच इंद्री मनसौं गनि॥
पौनै चार हजार, पाँच निद्रासौं गुनिए।
सहस पौन उनईस, नेह अरु मोह सु सुनिए॥
साढे सैतीस हजार सब, भेद प्रमाद प्रमानिए।
छट्टे गुणनकलौ कहे, त्याग आप थिर ठानिए॥४२॥

अर्थ— विकथा^{५२} के २५ भेद हैं। उनसे २५ कषायों का गुणा करने से ६२५ होते हैं। और ६२५ का पाँच इन्द्रिय तथा मन अर्थात् छह से गुणा करने से ३७५० होते हैं। इन्हें पाँच निद्रा से गुणाकार करने से पौने उईस हजार १८७५० भेद होते हैं। और इन भेदों को स्नेह और मोहरूप दो की संख्या से गुणाकार करने से ३७५०० होते हैं। ये प्रमाद छट्टे गुणस्थान तक रहते हैं। इनका त्याग करके अपने आप में स्थिर होना चाहिए।

ज्योतिषमण्डल की ऊँचाई

छप्पय

सत सतक अरु नवै, तासुपर तारे राजै।
ता ऊपर दस भान, असीपर चन्द विराजै॥
च्यारि नखत बुध च्यारि, तीनि पर सुक्र बतायौ।
तीनि गुरु कुज तीनि, तीनि पर सनि ठहरायौ॥
इमि नवसै जोजन भूमितै, जोतिषचक्र बखानिए।
इकसौ दस जोजन गगनमै, फेलि रह्यौ परमानिए॥४३॥

अर्थ— पृथ्वी से ७९० योजन की ऊँचाई पर तारों के विमान हैं। उनसे दश योजन की ऊँचाई पर सूर्य और उससे ८० योजन की ऊँचाई पर चन्द्रमा है। चन्द्रमा से ऊपर चार योजन पर नक्षत्र, चार योजन पर बुध, तीन योजन पर शुक्र, तीन पर गुरु, तीन पर मंगल और तीन पर शनि; इसप्रकार क्रम से एक के ऊपर एक हैं। सब

⁵² विकथा के मूल भेद तो चार ही हैं; परन्तु उत्तरभेद मूलसहित २५ हैं— राज कथा, भोजन कथा, स्त्री कथा, चोर कथा, धन, वैर, परखण्डन, देश, कपट, गुणबन्ध, दैवी, निष्ठुर, शून्य, कंदर्प, अनुचित, भंड, मूर्ख आत्मप्रशंसा, परवाद, ग्लानि, परपीड़ा, कलह, परिग्रह साधारण, संगीत।

मिलाकर पृथ्वी से ९०० योजन की ऊँचाई तक ज्योतिषचक्र है और आकाश में उसका विस्तार एकसौ दश योजन का है। अर्थात् पृथ्वी से ७९० योजन की ऊँचाई से उसका प्रारम्भ होता है और ९०० योजन पर अन्त होता है। बीच में ११० योजन में उसका विस्तार है।

गुणस्थानों का गमनागमन

छप्पय

मिथ्या मारग च्यारि, तीनि चउ पाँच सात भनि।
दुतिय एक मिथ्यात, तृतिय चौथा पहला गनि॥
अव्रत मारग पाँच तीनि दो एक सात पन।
पंचम पंच सुसात, चार तिय दोय एक भन॥
छट्टे षट इक पंचम अधिक,
सत आठ नव दस सुनौ।
तिय अध ऊरध चौथे मरन,
ग्यार बार विन दो मुनौ॥४४॥

अर्थ— पहले मिथ्यात गुणस्थान से ऊपर चढ़ने के चार मार्ग हैं। कौं जीव मिथ्यात्व से तीसरे गुणस्थान में जाता है, कोई चौथे में, कोई पाँचवें में और कोई एकदम सातवें में जाता है। दूसरे सासादन गुणस्थान से एक ही मार्ग है अर्थात् वहाँ से मिथ्यात्व गुणस्थान में ही जाता है। तीसरे गुणस्थान से यदि ऊपर चढ़ता है, तो चौथे गुणस्थान में जाता है और यदि नीचे पड़ता है, तो पहले में आकर पड़ता है। चौथे अव्रतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से ऊपर नीचे जाने के पाँच मार्ग हैं। नीचे पड़ता है, तो तीसरे दूसरे वा पहले में आता है और यदि ऊपर चढ़ता है, तो पाँचवें वा सातवें गुणस्थान में जाता है। पाँचवें गुणस्थान से भी पाँच मार्ग हैं। ऊपर चढ़ेगा, तो सातवें में जायगा और नीचे पड़ेगा, तो चौथे तीसरे दूसरे या पहले में आवेगा। छट्टे गुणस्थान से छह मार्ग हैं। पाँचवें गुणस्थान से एक अधिक है अर्थात् ऊपर चढ़ेगा, तो सातवें में जायगा और नीचे उतरेगा तो, पाँचवें चौथे तीसरे दूसरे वा पहले में आ जायगा। सातवें, आठवें, नववें और दशवें गुणस्थान से उपशमश्रेणीवाले के तीन मार्ग हैं। दो अधो ऊर्ध्व के अर्थात् इन गुणस्थानों से जीव नीचे पड़ेगा, तो अनुक्रम से एक एक उतरेगा, अर्थात् छठे, सातवें, आठवें और नववें में आवेगा और ऊपर चढ़ेगा, तो अनुक्रम से एक एक ऊपर चढ़ेगा, अर्थात् आठवें, नववें, दशवें और ग्यारहवें में जावेगा। और तीसरा मार्ग मृत्यु के समय का है। ऐसा नियम है कि इन गुणस्थानों से यदि जीव मरण करे, तो मृत्यु के समय उसका चौथा अव्रत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान हो जाय; परन्तु इन गुणस्थानों में मरण नहीं होता। ग्यारहवें गुणस्थान से बारहवें में जाने के मार्ग को छोड़कर दो मार्ग हैं। अर्थात्

इस गुणस्थानवाला जीव बारहवें गुणस्थान में नहीं चढ़ सकता। नीचे उतरेगा, तो दशवें में आवेगा और मृत्यु के समय इसका भी चौथा गुणस्थान हो जायगा।

क्षपक वा क्षायकश्रेणीवाला जीव नीचे नहीं पड़ता है। ऊपर चढ़ता है, तो ग्यारहवें गुणस्थान में नहीं जाता है, दशवें से बारहवें में पहुँच जाता है। और बारहवें के विनाश तथा तेरहवें के प्रारम्भ में केवलज्ञान प्राप्त करके चौदहवें गुणस्थान में जाता है और उसके अन्त में मुक्त हो जाता है।

चौबीस तीर्थकरों के शरीर का वर्ण।

छप्पय।

पहुपदंत^{५३} प्रभु चंद, चंद सम सेत विराजै।
 पारसनाथ सुपास, हरित पन्नामय छाजै॥
 वासुपूज्य अरु पदम, रक्त माणिकदुति सोहै।
 मुनिसुव्रत अरु नेमि, स्याम सुरनरमन मोहै॥
 बाकी सोलै कंचन वरन, यह विवहार शरीरथुति।
 निहचै अरूप चेतन विमल, दरसग्यानचारित जुत॥४५॥

अर्थ— पुष्पदन्त और चन्द्रप्रभ भगवान् के शरीर का वर्ण चन्द्रमा के समान सफेद है, पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ का हरे पन्ने के समान रंग है, वासुपूज्य और पद्मप्रभ का लालमाणिक की प्रभा जैसा है, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ का सांवला (नीलमणि सरीखा) है, जिसे देखकर देवों और मनुष्यों का मन मोहि हो जाता है, और शेष १६ तीर्थकरों का वर्ण सोने की कांति के समान है। तीर्थकरों के शरीर की यह स्तुति व्यवहार से है। निश्चय से विचार किया जाय, तो वे रूपरहित हैं, चैतन्यमय हैं, निर्मल हैं, और क्षायिकदर्शन क्षायिक ज्ञान और क्षायिकचारित्र (स्वरूपाचरण) संयुक्त हैं।^{५४}

गोम्मटसार का मंगलाचरण

छप्पय

वन्दौ नेमिजिनेद, नमौ चौबीस जिनेसुर।

⁵³ द्वौ कुन्दैन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ। द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ। शेषा षोडशजन्ममृत्युरहिता सन्तप्तहेमप्रभास्तेसज्ञानदिवाकरा सुरनताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः॥

⁵⁴ चरचाशतक की अनेक प्रतियों में निम्नलिखित छप्पय और भी पाया जाता है। मालूम नहीं यह मूल का है या प्रक्षिप्त है।

महावीर बंदामि, बंदि सब सिद्ध महेसुर॥
सुद्ध जीव प्रणमामि, पंचपद प्रणमौं सुख अति।
गोमटसार नमामि, नेमिचंद आचारज निति॥
जिन सिद्ध मुद्ध अकलंकवर, गुणमणिभूषण उदयधर।
कहुं वीस परूपन भावसौं, यह मंगल सब विघनहर॥४६॥

अर्थ— श्रीनेमिनाथ तीर्थकर को नमस्कार है, चौबीसों तीर्थकरों को नमस्कार है, महावीर भगवान् की वन्दना कहता हूँ, सम्पूर्ण सिद्ध महेश्वरों की वन्दना करता हूँ शुद्ध आत्मा को प्रमाण करता हूँ, पंचपदों को अर्थात् पंचपरमेष्ठी को प्रणाम करता हूँ, गोमटसार ग्रन्थ को नमन करता हूँ और नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती को निरन्तर नमस्कार करता हूँ। ये आठों, जिनको कि नमस्कार करता हूँ कैसे हैं? जिन हैं, सिद्ध हैं, शुद्ध हैं, कलंकरहित हैं, वर (श्रेष्ठ) हैं और गुणरूपी मणियों के भूषणों को उदित करनेवाले हैं। इन सबको नमस्कार करके भावपूर्वक वीस प्ररूपणाओं का वर्णन करता हूँ। इस वर्णनरूपी कार्य से यह मंगल विघ्नबाधाओं का नाश करनेवाला होगा।

इस पद्य के जिन आदि विशेषण गोमटसार ग्रन्थ के भी हो सकते हैं। इनमें और सब विशेषणों का अभिप्राय तो स्पष्ट ही है, एक 'गुणमणिभूषणउदयधर' में कुछ चौज है। 'गुणमणिभूषण' नाम 'चामुण्डराय' का है। अर्थात् इन चामुण्डराय के लिए जिसका उदय हुआ है, ऐसा गोमटसार ग्रन्थ।

श्रीगोमटसार ग्रन्थ में आचार्य नेमिचन्द्र ने जो

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवर गेमिचंदमकलंकं।
गुणरतनभूसणुदयं जीवस्य परूवणं वोच्छं॥
यह मंगलाचरण किया है, उसका उक्त छप्पय में भावानुवाद है।

षट्विधि मंगल

नमहुं नाम अरहंत, थुनहु जिनबिंब कलिलहर।
परमौदारिक दिव्य बिंब, निर्वाण अवनिपर॥
कहहु कल्याणककाल, भजहु केवल गुणग्यायक।
यह षटविधि निच्छेप, महा मंगल वरदायक॥
मंगल दुभेद मल जाय गल, मंगल सुख लहै जीयरा
यह आदि मध्य परजंतलौं, मंगल राखौ हीयरा॥४७॥

अर्थ— १ अरहंत भगवान् का नाम लेकर नमस्कार करो (नाम निक्षेप), २ पापों के हरण करनेवाले जिन भगवान् के प्रतिबिम्बों का स्तवन करो (स्थापना निक्षेप), ३ तीर्थकर भगवान् के उत्कृष्ट औदारिक शरीरयुक्त दिव्य बिम्ब की स्तुति करो (द्रव्य निक्षेप), ४ केवलियों की निर्वाण भूमियों को सम्मेदशिखर आदि को नमस्कार करो (क्षेत्रनिक्षेप), ५ भगवान् के गर्भजन्मादि कल्याणक समयों का कथन करो (कालनिक्षेप) और समस्त पदार्थों का ज्ञायक जो केवलगुण (ज्ञान) है, उसको भजो (भावनिक्षेप)। इस तरह यह छह प्रकार का निक्षेप महामंगलरूप है और इच्छित वर देनेवाला है। यहाँ 'मंगल' शब्द के अर्थ करते हैं— एक तो 'मं' अर्थात् दो प्रकार के अन्तरंग और बहिरंग मलवा पाप जिससे 'गल' (गालयति) अर्थात् गल जावें— नष्ट हो जावें और दूसरा 'मंग' अर्थात् सुल 'ल' (लाति) अर्थात् लाता है— जिससे जीव सुख को प्राप्त करता है। यह मंगल प्रत्येक कार्य के आदि मध्य और अन्त तक हृदय में रखना चाहिए?

चौदह मार्गणा में पाँच प्ररूपणा गर्भित है

सवैया इकतीसा

जीव समास परजापत मन वच स्वास,
 इंद्रिकायमाहिं आव गतिमैं बखानिए।
 कायबल जोगमाहिं इंद्रि पाँच ग्यानमाहिं,
 आहार परिग्रह ए लोभमैं प्रवानिए॥
 क्रोधमाहिं भय अरु वेदमाहिं मैथुन है,
 ग्यान ग्यानमाहिं दर्शदर्शनमाहिं जानिए।
 पाँचौं प्ररूपणा ए चौदहमैं गर्भित हैं,
 गुनस्थान मारगना दोय भेद मानिए॥४८॥

अर्थ— जीवसमा, पर्याप्ति, मनप्राण, वचनप्राण और श्वासोच्छ्वासप्राण, ये इंद्रिमार्गणा में और कायमार्गणा में, आयुप्राण गतिमार्गणा में, काय बल योगमार्गणा में, पाँचों इंद्रियाँ ज्ञानमार्गणा में, आहार संज्ञा और परिग्रह संज्ञा लोभकषायमार्गणा में, भयसंज्ञा क्रोधमार्गणा में, मैथुनसंज्ञा वेदमार्गणा में, ज्ञानोपयोग ज्ञानमार्गणा में और दर्शनोपयोग दर्शनमार्गणा में गर्भित हैं। इसतरह पाँचों प्ररूपणा चौदह मार्गणाओं में गर्भित हैं। सामान्यता से गुणस्थान और मार्गणा ये दो ही भेद हैं। अमिप्राय यह कि विशेषता से तो पाँच प्ररूपणा, चौदह मार्गणा और गुणस्थान इस तरह बीस प्ररूपणा हैं; परन्तु जब पाँच प्ररूपणाओं को मार्गणाओं में गर्भित कर लेते हैं, तब केवल दो ही भेद रह जाते हैं।

बारह प्रसिद्ध पुरुषों के नाम

छप्पय

बंदौ पारसनाथ, नमौ बल रामचंद वर।
कामदेव हनुवंत, प्रगट रावन मानी नर॥
दानेस्वर स्नेयांस, सीलतै सीता नामी।
तप बाहूबलि नाव, भाव भरतेस्वर स्वामी॥
जग महादेव है रुद्रपद, कृष्ण नाम हरि जानिए।
'द्यानत' कुलकर में नाभिनृप, भीम बलीभुज मानिए॥४९॥

अर्थ— तीर्थकरों में तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ स्वामी और बलभद्रों में नववें रामचन्द्र प्रसिद्ध हुए हैं। इन दोनों महात्माओं को नमस्कार करता हूँ। कामदेवों में १८ वें कामदेव हनुमान, मानी पुरुषों में आठवाँ प्रतिनारायण रावण, दानी पुरुषों में राजा श्रेयांस जिन्होंने कि आदि भगवान् को इक्षुरस का आहार दिया था, शीलवती स्त्रियों में सीता, तपस्वियों में आदिनाथ स्वामी के पुत्र बाहूबलि जिन के कि शरीर पर लताएँ चढ़ गई थीं, भगवान् पुरुषों में भरतचक्रवर्ती जिन्हें कि परिग्रह छोड़ते ही अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त हो गया था, रुद्रों में ग्यारहवाँ रुद्र महादेव, नव हरि अर्थात् नारायणों में नववें नारायण श्रीकृष्ण, चौदह कुलकरों में नाभिराजा और बलवती भुजावालों में अर्थात् पराक्रमियों में कुन्ती का पुत्र भीम (पाण्डव) बहुत प्रसिद्ध हुआ।

यों तो शलाका पुरुषों में सब ही प्रसिद्ध हैं; परन्तु लोक में उनमें से उक्त पुरुष बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं।

सम्पूर्ण द्वीपसमुद्रों के चन्द्रमाओं की गिनती।

सवैया इकतीसा।

जम्बूदीप दोय लवनांबुधिमें चारि चंद,
धातखण्ड बारै कालोदधि बियालीस हैं॥
पुष्कर के भाग दोय ईधर बहत्तरि हैं,
ऊधै बारैसै चौसठि भासे जगदीस हैं॥
पुष्कर जलधि सार दो सत ग्यारै हजार,
आगै आगै चौगुनै बखानै निसदीस हैं।
जेते लाख तेते बले दूने दूने अधिक हैं,
सबमै असंख चैताले बदत मुनीस हैं॥५०॥

अर्थ— जम्बूद्वीप में २, लवणसमुद्र में ४, धात की खण्ड में १२ और कालोदधि में ४२ चन्द्रमा हैं। आगे पुष्करद्वीप है। उसके दो भाग हैं। इधर के पहले भाग में ७२ और उधर के दूसरे भाग में १२६४ चन्द्रमा हैं। ऐसा जगदीस अर्थात् जिनेन्द्रभगवान् ने कहा है। पुष्करद्वीप के आगे पुष्कर समुद्र में ११२०० चन्द्रमा हैं और उसके आगे— समुद्र से चौगुने समुद्र में और द्वीप से चौगुने^{५५} द्वीप में हैं। ढाई द्वीप से आगे के द्वीप और समुद्र जो जितने लाख योजन के हैं, उनमें उतने ही बलय^{५६} हैं और प्रत्येक बलय में दो दो चन्द्रमा होते हैं। इसलिए बलयों में असंख्यात जिनचैत्यालय हैं। उनकी मुनिगण वन्दना करते हैं।

अधोलोक के चैत्यालयों की संख्या।

कवित्त (३१ मात्रा)

चौसठि लाख असुर जिनमंदिर,
लाख चौरासी नागकुमार।
हेमकुमार सुलाख बहत्तरि,
छह विध लाख छहत्तरि धार॥
लख छानवै बातकुमार,
पताललोक भावन दस सार।
सात कोरि सब लाख बहत्तरि,
चैत्याले बन्दौ सुखकार॥५१॥

अर्थ— असुरकुमार देवों के भवनों में ६४ लाख, नागकुमारों के भवनों में ८४ लाख और हेमकुमारों के भवनों में ७२ लाख अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। आगे जो छह प्रकार के कुमार अर्थात् विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, मेघकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार देव हैं, उनके भवनों में छिहत्तर छिहत्तर लाख और वायुकुमारों के भवनों में ९६ लाख चैत्यालय हैं। इसप्रकार पाताल लोकवासी दश प्रकार के देवों के भवनों में सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर हैं। उनकी मैं वन्दना करता हूँ। वे सुख के देनेवाले हैं।

⁵⁵ पूर्व पूर्व द्वीप और समुद्र के चन्द्रमाओं के प्रमाण से उत्तरोत्तर द्वीप और समुद्र के चन्द्रमाओं का प्रमाण चौगुना चौगुना है। परन्तु इतना विशेष है कि उत्तरद्वीप और समुद्र के बलयों के प्रमाण से दूना प्रमाण उस चौगुनी संख्या में और मिलाना चाहिए। जैसे पूर्व पुष्करसमुद्र के चन्द्रमाओं की संख्या ११२०० है, जिसको चौगुना करने से ४४८०० हुए। इसमें उत्तरद्वीप के बलयों के प्रमाण ६४ के दूने १२८ मिलाने से उत्तरद्वीप के चन्द्रमाओं का प्रमाण ४४९२८ होता है। इसही प्रकार आगे जानना।

⁵⁶ जम्बूद्वीप में एक, लवण समुद्र में दो, धातकी खण्ड में छह, कालोदधि में इक्कीस और पुष्कर के पूर्वार्ध में छत्तीस बलय (परिधि) हैं। आगे के बलयों के प्रमाण में विशेषता है। पुष्कर का उत्तरार्ध आठ लाख योजन का है; इसलिए उसमें आठ बलय हैं। पुष्करसमुद्र ३२ लाख योजन का है, इसलिए उसमें ३२ बलय हैं।

अर्थात् उनके स्मरण, वन्दन से पुण्यबंध होता है और पुण्यबन्ध से सुख प्राप्त होता है।

मध्यलोक के चैत्यालय।

छप्पय

पंचमेरु के असी, असी वक्षार विराजै।
गजदंतनपै बीस, तीस कुलपर्वत छाजै॥
सौ सत्तर वैतार धार, कुरुभूमि दसोत्तर।
इष्वाकार पहार, चार चव मानुषोत्र पर॥
नंदीसुर बावनि रुचिकमै, चार चार कुण्डल सिखर।
इम मध्यलोक मै चारिसै, ठावन बंदौ विघनहर॥५२॥

अर्थ— मध्यलोक में ४५८ अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। उनका विवरण इसप्रकार है— ढाई द्वीप में पाँच मेरुपर्वत हैं और प्रत्येक मेरुपर सोलह सोलह चैत्यालय हैं। इस तरह पंचमेरु के ८०। एक एक मेरु के पूर्व पश्चिम विदेहक्षेत्रों में सोलह सालेह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वत पर एक एक मन्दिर है। इस तरह सब वक्षार पर्वतों के ८०। एक एक मेरु सम्बन्धी चार चार गजदन्तपर्वत हैं। इन पर भी एक एक चैत्यालय है। इस तरह गजदन्तों के २०। एक मेरु सम्बन्धी छह छह कुलाचल हैं; उनपर ३०। एक एक मेरु सम्बन्धी चौतीस चौतीस वैताढ्य पर्वत हैं, उन पर १७०। एक एक मेरुसम्बन्धी देवकुरु और उत्तरकुरु नामक दो दो भोगभूमियाँ हैं; वहाँ पर १०, इष्वाकार पर्वत पर ४, मानुषोत्तर पर्वतपर ४, नन्दीश्वरदीप में ५२, रुचिक द्वीप के रुचिक पर्वत पर ४ और कुण्डलद्वीप के कुण्डलगिरि पर ४; इस तरह ६८। इन सब ४५८ चैत्यालयों की मैं वन्दना करता हूँ। ये सब विघ्नों के हरण करनेवाले हैं।

ऊर्ध्वलोक के अकृत्रिम चैत्यालय।

स्वैया इकतीसा।

प्रथम बत्तीस दूजै अट्ठाईस तीजै बारै,
चौथै आठ पाँचै छट्टै चार लाख ख्यात हैं।
सातै आठमै पचास नौमै दसमै चालीस,
ग्यारै बारै छै हजार चारौ सत सात हैं॥
अधो एक सत ग्यारै मध्य एक सत सात,
ऊरध इक्यानु नव नवोत्तरै जात हैं।
पंचोत्तरे चवरासी लाख सत्तानू हजार,

तेईस चैत्याले सब बन्दौ अघघात हैं।।५३।।

अर्थ— पहले सौधर्म स्वर्ग में ३२ लाख, दूसरे ईशानस्वर्ग में २८ लाख, तीसरे सनत्कुमारस्वर्ग में १२ लाख, चौथे माहेन्द्रस्वर्ग में ८ लाख, पाँचवें ब्रह्म और छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में ४ लाख, सातवें लांतव और आठवें कापिष्टस्वर्ग में ५० हजार, नववें शुक्र, दशवें महाशुक्र स्वर्ग में ४० हजार, ग्यारहवें बारहवें सतार सहस्रार स्वर्ग में ६ हजार, तेरहवें चौदहवें प्रन्द्रहवें सतार सहस्रार स्वर्ग में ६ हजार, तेरहवें चौदहवें पन्द्रहवें सोलहवें आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चारों स्वर्गों में ७००, अधोग्रैवेयक में १११, मध्यग्रैवेयक में १०७, ऊर्ध्वग्रैवेयक में ९१, नवोत्तर अर्थात् अनुदशि विमानों में ९ और पंचोत्तर विमानों में ५; इस तरह ऊर्ध्वलो के सब मिलाकर जो ८४९७०२३ जिन चैत्यालय पापों के नाश करनेवाले हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

सौधर्म इन्द्र की सेना की गणना

इंद्रसेन सात हाथी घोरे रथ प्यादे बैल,
गंधरव नृत्य सात सात परकार हैं।
आदि चौरासी हजार आगैं षट दूने दूने,
एक कोरि छै लाख अड़सठ हजार हैं।।
एते गज तेते तेते छह भेद सबके ते,
सात कोरि छियालीस लाख निरधार हैं।
सहस छिहत्तर हैं और एक अवतार न्योग,
पुण्यकर्म भोग भोग मोखकौ सिधार हैं।।५४।।

अर्थ— सौधर्मस्वर्ग के इन्द्र की सेना सात प्रकार की है— हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादा, बैल, गन्धर्व और नर्तक। और इस सात प्रकार की सेना के सात सात प्रकार और भी हैं। आदि की अर्थात् पहली सेना में ८४ हजार हाथी हैं और आगे की छह सेनाओं में इनसे दूने दूने हाथी हैं। इस हिसाब से मिलाकर १०६६८००० हाथी हैं। जितने ये हाथी हैं, उतने ही घोड़े रथ आदि हैं। सब सेना की गिनती हाथी घोड़े आदि मिलाकर ७४६७६००० है। इस सौधर्म इन्द्र का केवल एक अवतार धारण करने का नियोग होता है। पुण्यकर्म के उदय से प्राप्त हुए इस महान् वैभव को भोगकर यह यहाँ से च्युत होकर एक मनुष्य जन्म धारण करके मोक्ष को सिधारता है।

इन्द्रियों के विषय की सीमा

छप्पय

फरस चारिसै धनुष, असेनीलौ दुगुना गनि।
 रसना चौसठि धनुष, घान सौ तेइंद्र भनि॥
 चख जोजन उनती, सतक चौवन परवानो।
 कान आठसै धनुष, सुनै सेनी सो जानो॥
 नव जोजन घान रसन फरस,
 कान दुवादस जोजना।
 चख सैंतालीस सहस दुसै,
 तेसठि देखै जिन भना॥५५॥

अर्थ— एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती हैं। इसकी स्पर्शन इन्द्रिय का विषय ४०० धनुष्य का होता है। आगे दोइन्द्रिय से लेकर असेनी विषय पंचेन्द्री तक के जीवों के जो स्पर्शन इन्द्रिय होती है उसका विषय दूना दूना है। अर्थात् दोइन्द्रिय की स्पर्शन इन्द्रिय का विषय ८००, पंचेन्द्रिय का ६४०० धनुष है। दो इन्द्रिय जीवों के स्पर्शन के सिवा रसना (जीभ) इन्द्रिय और होती है। इसका विषय ६४ धनुष का है। आगे तेइन्द्रिय और पंचन्द्रिय जीवों की रसना का विषय भी दूना दूना अर्थात् क्रम से १२८, २५६ और ५१२ धनुष का है। तेइन्द्रिय जीवों के पहली दो इन्द्रियों के सिवा एक घ्राण (नाक) इन्द्रिय और होती है। इसका विषय १०० धनुष है और चौइन्द्रिय तथा असेनी पंचेन्द्रिय जीवों की घ्राण इन्द्रिय का विषय पूर्व से दूना दूना अर्थात् २०० और ४०० धनुष का है। चौन्द्रिय जीवों के पहले कही हुई तीन इन्द्रियों के सिवा एक नेत्र इन्द्रिय और होती है। इसका विषय २९५४ योजन का है। इससे दूना अर्थात् ५९०८ योजन असेनी पंचेन्द्रिय की नेत्र इन्द्रिय का विषय है। असेनी पंचेन्द्रिय के चौ इन्द्रिय से एक कान इन्द्रिय और अधिक होती है। अर्थात् जो सुनता है सो असेनी पंचेन्द्रिय है। इसका विषय ८०० धनुष का है पंचेन्द्रिय जीवों की इन्द्रियों का विषय इसप्रकार है— घ्राण (नाक) का ९ योजन, रसना, स्पर्श और कान का बारह बारह योजन और नेत्रद्वारा पंचेन्द्रिय जीव ४७२६३ योजन तक देख सकता है। इसप्रकार जिन भगवान् ने कहा है।

यहाँ इन्द्रियों के विषय की उत्कृष्ट सीमा बतलाई है। इसका अभिप्राय यह है कि एकेन्द्रियादि जीवों की इन्द्रियाँ अधिक से अधिक इतने दूरतक के पदार्थों का ज्ञान कर सकती हैं। इससे आगे के पदार्थों का वे विषय नहीं कर सकती हैं। पंचेन्द्रिय जीवों में पाँचों इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषय जो ऊपर कहा है, वह चक्रवर्ती के होता है, अन्य सामान्य जीवों के नहीं।

केवली समुद्धात करते हैं, तब उनके कौन कौन योग होते हैं?

पहलैँ समैमैँ करैँ दंड आठमैँ संवरैँ,
 परदेस आतम औदारिक प्रमानिए।
 दूसरैँ कपाट होय सातमैँ संवरैँ सोय,
 संवरैँ प्रतर छट्टैँ मिस्र जोग जानिए॥
 तीसरैँ प्रतर, चौथैँ पूरत सरव लोक,
 पूरन संवरैँ पाँचैँ कारमान मानिए।
 आठ समैमाहिं जात केवल समुदघात,
 निर्जरा असंख गुनी देव सो बखानिए॥५६॥

अर्थ— मूल शरीर के बिना छोड़े जीव के प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं। चौदहवें गुणस्थान के पूर्ण होने में जब अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रह जाता है, तब गोत्र वेद और नामकर्म की स्थिति आयुकर्म की स्थिति के समान करने के लिए केवली⁵⁷ भगवान् के आत्मप्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं और पहले समय में दंडे के आकार होते हैं जब कि जीव आत्मप्रदेशों को शरीर के विस्तार के प्रमाण ऊपर नीचे की तरफ वातवलयों को छोड़कर चौदह राजूतक विस्तृत करता है। दूसरे समय में किवाड़ सरीखे होते हैं जबकि वे प्रदेश दंड के बराबर चौड़ाई लिए हुए ही यदि पूर्व को मुँह हो तो दक्षिण उत्तर को और उत्तर को मुँह हो तो पूर्व, पश्चिम की तरफ वातवलय के सिवा लोकपर्यन्त पसर जाते हैं। तीसरे समय में प्रतररूप होते हैं जबकि जो प्रदेश दूसरे समय में उत्तर दक्षिण की तरफ शरीराकार बने रहे थे वे उत्तर दक्षिण की तरफ भी वातवलय के सिवा लोक पर्यन्त फेल जाते हैं और चौथे समय में लोकपूर्ण हो जाते हैं अर्थात् सारे लोक में व्याप्त हो जाते हैं। फिर पाँचवें समय में प्रतररूप, छट्टे समय में कपाटरूप और सातवें समय में दंडरूप होकर आठवें में संकुचित होकर शरीर में समा जाते हैं। इन आठ समयों में आत्म के औदारिक कायादि कौन कौन योग होते हैं वे इस सवैया में बतलाये हैं— जब आत्मा के प्रदेश पहले समय में दंडरूप होते हैं और आठवें में संकुचित होते हैं, उस समय औदारिक काययोग होता है। दूसरे समय में जब कपाटरूप होते हैं और सातवें में कपाट अवस्था से संकुचित होते हैं तथा छट्टे समय में जब प्रतर का संवरण होता है, तब औदारिकमिश्र योग होता है। तीसरे समय में जब प्रतर रूप होते हैं, चौथे में जब सारे लोक को पूर्ण करते हैं और पाँचवें में जब लोकपूर्ण

⁵⁷ जिन मुनियों को आयु के छह महीना शेष रहने के पीछे केवलज्ञान होता है, वे मुनि नियम से समुद्घात करते हैं; परन्तु जिनके छह महीने से पहले केवल ज्ञान हो जाता है, वे समुद्घात करते भी हैं; परन्तु जिनके छह महीने से पहले केवलज्ञान हो जाता है, वे समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं— कुछ नियम नहीं है।

अवस्था का संवरण करते हैं, तब कार्माण योग होता है। इस तरह आठ समयों में केवल समुद्धात होता है, जिनमें असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। ऐसा जिनदेव ने कहा है।

मिथ्याती की मुक्ति न हो, सम्यक्ती की हो।

एक समैमाहिं एकसमैपरबद्ध बंधै,
एक समै एकसमैपरबद्ध झरै है।
वर्गना जघन्यमै अभव्यसौ अनंतगुनी,
उत्किष्ट सिद्धकौ अनंत भाग धरै है॥
जैसै एक गास खाय सात धात होय जाय,
तैसै एक सातकर्मरूप अनुसरै है।
यों न लहै मोख कोइ जाके उर ग्यान होइ,
एकसमै बहु खोई सोइ सिव बरै है॥५७॥

अर्थ— जब तक मिथ्यात्व परिणाम रहते हैं, तब तक आत्मा कर्मों से नहीं छूट सकता है। जब सम्यक् परिणाम होते हैं, तब ही वह कर्मों से मुक्त होता है। इसी बात को बतलाते हैं— मिथ्याती जीव एक समय में एक—समयप्रबद्ध कमवर्गणाओं का बंध करता है और एक समय में एक—समय प्रबद्ध वर्गणाओं को ही झड़ाता है। (एक समय में जितने कर्मपरमाणुओं का बंध होता है, उतने को समयप्रबद्ध कहते हैं। इन समयप्रबद्ध कर्मपरमाणुओं में अनन्त⁵⁸ कर्मवर्गणाएँ होती हैं।) जघन्य वर्गणा का प्रमाण अभव्य जीवों की संख्या से अनन्त गुना और उत्कृष्ट वर्गणा का सिद्धजीवसंख्या के अनन्तवें भाग होता है। जिस तरह एक तरह के ग्रास का भोजन करने से परिपाक में उससे रक्त, मांस, मज्जा, वीर्य आदि सात धातुएँ बनती हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व परिणामों से बांधी हुई उक्त कर्मवर्गणाओं का सातकर्मरूप परिणाम होता है। इसलिए कोई जीव यों ही सहज मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। क्योंकि इस तरह कर्मों का आवागमन बराबर होता रहता है। कर्म बराबर सत्ता में बने रहते हैं। जिसके हृदय में आत्म शरीरादि सम्बन्धी भेद— विज्ञान हो जाता है, वह समकित्ती जीव भेदज्ञान के बल से प्रत्येक समय बंध की अपेक्षा अधिक कर्मों को क्षय करता है अर्थात् उसके बंध थोड़ा होता है और निर्जरा बहुत होती है, इसलिए वही, मुक्ति सुन्दरी का वरण करता है।

आठ कर्मों के आठ दृष्टान्त।

⁵⁸ अनन्त के अनन्तभेद हैं।

देवपै परयो है पट रूपकौ न ग्यान होय,
 जैसे दरबान भूप—देखनौं निवारै है।
 सहत लपेटी असिधारा सुखदुखकार,
 मदिरा ज्यौं जीवनकौ मोहिनी बिथारै^{५९} है।
 काठमैं दियौ है पाँव करै थितिकौ सुभाव,
 चित्रकार नाना नाम चीतकै^{६०} समारै है।
 चक्री^{६१} ऊँच नीच घरै^{६२} भूप दीयौ मनै^{६३} करै,
 एई आठ कर्म हरै सोई हमै तारै है॥५८॥

अर्थ— देव की मूर्ति पर यदि कपड़ा पड़ा हुआ हो, तो जिस तरह उसका ज्ञान नहीं होता है— उसका रूप नहीं दिखता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्म का परदा पड़ने से आत्मा का ज्ञान गुण ढँक जाता है। जिस तरह दरबान अर्थात् पहरेदार राजा का दर्शन नहीं करने देता है, उसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म आत्मा के दर्शनगुण का दर्शन नहीं होने देता है। जिस तरह शहद में लिपटी हुई तलवार की धार चाटने से मीठी लगती है और साथ ही जीभ को काट डालती है, उसी प्रकार से वेदनी कर्म आत्मा को सुखी, दुःखी करता है। यह कर्म आत्मा के अव्याबाध गुण का घात करता है। जिस तरह शराब जीवों पर मोहनी का अर्थात् बेहोशी का (बावलेपन का) विस्तार करती है, उसी प्रकार से मोहनी कर्म आत्मा को मोहित कर डालता है। इस कर्म के संयोग से जीव पर पदार्थों में इष्ट तथा अनिष्ट की कल्पना करता है और तद्रूप आचरण करता है। करता है। अर्थात् इससे जीव के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात होता है। जिस तरह चोर का पैर काठ में दे देने से वह काठ उसकी स्थिति करता है— उसको कहीं हिलने चलने नहीं देता है, उसी प्रकार से आयु कर्म जीव की भवभव में स्थिति करता है। जब तक एक शरीर की आयु पुरी नहीं हो जाती है, तब तक जीव दूसरे शरीर में नहीं जा सकता है। इससे अवगाह गुण का घात होता है। जिस प्रकार चित्रकार नानाप्रकार के चित्र बनाकर उनके जुदा जुदा नाम रखता है, उसी प्रकार से नाम कर्म एकेन्द्रियादि नामवाले शरीर बनाता है। यह कर्म आत्मा के सूक्ष्मत्वगुण का घात करता है। जिस प्रकार से कुम्हार ऊँचे नीचे अर्थात् छोटे बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार से गोत्र कर्म ऊँच नीच कुल में जीव को उत्पन्न करता है और जिस प्रकार भण्डारी राजा को दान करने से रोकता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्मदान लाभभोग और उपभोग में रुकावट करता

⁵⁹ विस्तृत करता है— मोहनी क विस्तार करता है।

⁶⁰ चित्रित करके— बना करके।

⁶¹ चक्रवाला अर्थात् कुँभार।

⁶² घड़ता है— बनाता है।

⁶³ रोकता है।

है। इन आठों कर्मों का जिन्होंने हरण किया है, वे ही (सिद्धपरमेष्ठी) हमको तारने में समर्थ हैं।

चौदह गुणस्थानों में सत्तावन आस्रव।

पचपन अरु पचास तेतालिस,
छयालिस सैतिस चौविस जान।
बइस ठाइस सोलह दस अरु,
नव नव सात अंत न बखान॥
चौदह गुणस्थानकमै इह विध,
आस्रवद्वार कहे भगवान्।
मूल चार उत्तर सत्तावन,
नास करौ धरि संवरग्यान॥५९॥

अर्थ— पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में ५५ आस्रव होते हैं। आहारक और आहारकमिश्र ये दो नहीं होते हैं। दूसरे सासादन गुणस्थान में ५० आस्रव होते हैं— पाँच मिथ्यात्व, एक आहारक और एक आहारकमिश्रयोग ये सात नहीं होते हैं। तीसरे मिश्र गुणस्थान में ४३ आस्रव होते हैं— १४ आस्रव नहीं होते हैं— ५ मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुबन्धी, २ आहारक और औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र, कार्माण ये तीन। चौथे अव्रत गुणस्थान में ४६ आस्रव होते हैं— ऊपर के ४३ और अंत के ३ मिश्र मिलाकर। पाँचवें देशविरति गुणस्थान में ३७ आस्रव होते हैं। ऊपर के ४६ में से ४ अप्रत्याख्यानकषाय, ४ योग और एक त्रसवध इस तरह ९ घटा देना चाहिए। छठे प्रमत्तसंयम में २४ आस्रव होते हैं— ४ संज्वलन कषाय, ९ हास्यादि नोकषाय, ९ योग और २ आहारक। सातवें अप्रमत्त में २२ होते हैं— ४ संज्वलन कषाय, ९ योग और ९ हास्यादि नोकषाय। आठवें अपूर्वकरण में ऊपर के ही २२ आस्रव होते हैं। १ नववें अनिवृत्तिकरण में १६ आस्रव होते हैं— ९ योग, ४ संज्वलन कषाय और ३ वेद। दशवें सूक्ष्मसाम्पराय में १० आस्रव होते हैं— ९ योग और १ सूक्ष्म लोभ। ग्यारहवें उपशान्तकषाय में इन्हीं ९ योगों का आस्रव होता है, बारहवें क्षीणमोह में भी इन्हीं ९ योगों का आस्रव होता है और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थान में ३ काययोग, २ वचनयोग और २ मनोयोग इस तरह सात का आस्रव होता है और अन्त के चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थान में आस्रव सर्वथा नहीं होता है। इस तरह भगवान् केवली ने बतलाया है कि कौन कौन गुणस्थानों में कितने कितने आस्रवद्वार होते हैं। आस्रव के मूल भेद

चार^{६४} हैं और उत्तर भेद ५७ हैं। हे भव्यो, संवरतत्त्व को जानकर इनके नाश करने का प्रयत्न करो।

चौदह गुणस्थानों में १२० प्रकृतियों का बन्ध

इकसौ सतरै एक एकसौ,
चौहत्तर सतहत्तर मान।
सतसठ तेसठ उनसठ ठावन,
बाइस सतरै दसमै थान॥
ग्यारम बारम तेरम साता,
एक बंध नहिं अंत निदान।
सब गुणथानक बँधै प्रकृति इम,
निहचै आप अबंध पिछान॥६०॥

अर्थ— पहले मिथ्यात्वगुणस्थान में ११७ प्रकृतियों का बंध होता है। कर्मों की सब मिलाकर १४८ प्रकृतियाँ हैं। इनमें से स्पर्शादिक २० प्रकृतियों का स्पर्शादिक ४ में और ५ बंधन और ५ संघातों का पाँच शरीरों में अन्तर्भाव हो जाता है। इस कारण भेद—विवक्षा से सब १४८ और अभेद विवक्षा से १२२ प्रकृतियाँ हैं। इनमें से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन दोनों का बन्ध नहीं होता है। क्योंकि इन दोनों की सत्ता सम्यक्त्व परिणामों से मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड करने पर होती है। इसलिए अनादि मिथ्यादृष्टि की बन्धयोग्य प्रकृतियाँ कुल १२० हैं। इनमें से मिथ्यात्व—गुणस्थान में तीर्थकर प्रकृति, आहारक शरीर और और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। क्योंकि इन तीनों का बंध सम्यग्दृष्टियों के ही होता है। इस तरह पहले गुणस्थान में ११७ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

दूसरे सासादन गुणस्थान में 'एक एकसौ' अर्थात् १०१ प्रकृतियों का बंध होता है। अर्थात् ऊपर कही हुई ११७ प्रकृतियों में से मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रियजाति, विकलत्रय तीन, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन सोलह प्रकृतियों का बंध नहीं होता है।

तीसरे मिश्रगुणस्थान में ७४ प्रकृतियों का बंध होता है। दूसरे गुणस्थान में जिन १०१ प्रकृतियों का बंध होता है, उनमें से

⁶⁴ आस्रव के १ द्रव्यबन्ध का निमित्तकारण, २द्रव्यबन्ध का उपादानकारण, ३ भावबन्ध का तिमित्तकारण और ४ भावबन्ध का उपादानकारण ये चार भेद हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलित संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु और उद्योत इन २५ व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने से शेष रहीं ७६। इनमें से मनुष्यायु और देवायु ये दो और घटा देने चाहिए। क्योंकि इस गुणस्थान में किसी भी आयुर्कर्म का बंध नहीं होता है। इस तरह ७४ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

चौथे गुणस्थान में ७७ प्रकृतियों का बन्ध होता है। ऊपर कही हुई ७४ और मनुष्यायु, देवायु तथा तीर्थकर ये तीन कुल ७७।

पाँचवें गुणस्थान में ६७ प्रकृतियों का बन्ध होता है। चौथे गुणस्थान की ७७ प्रकृतियों में से अप्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रवृषभनाराच संहनन ये दश व्युच्छिन्न—प्रकृतियाँ घटा देने से ६७ रह जाती हैं।

छठे गुणस्थान में ६३ प्रकृतियों का बन्ध होता है। ऊपर के ६७ में से प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन ४ को घटा देने से ६३ रहती हैं।

सातवें गुणस्थान में ५९ प्रकृतियों का बन्ध होता है। छठे गुणस्थान की ६३ बन्धप्रकृतियों में से अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशःकीर्ति, अरति और शोक के घटाने से शेष रहीं ५७, इनमें आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग इन दो के मिलाने से ५९ होती हैं।

आठवें गुणस्थान में ५८ प्रकृतियों का बन्ध होता है। ऊपर की ५९ में से देवायु को घटाने से ५८ प्रकृतियाँ बंधयोग्य रहती हैं।

नववें गुणस्थान में २२ प्रकृतियों का बन्ध होता है। ऊपर की ५८ में से नीचे लिखीं ३६ व्युच्छिन्न प्रकृतियों को घटाने से २२ रहती हैं— निद्रा, प्रचला, तीर्थकर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा और भय।

दशवें गुणस्थान में १७ प्रकृतियों का बन्ध होता है। ऊपर की २२ में से पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ को घटाने से १७ रहती हैं।

ग्यारहवें, बारहवें, और तेरहवें गुणस्थान में केवल एक सातावेदनीय प्रकृति का बंध होता है। दशवें में जिन १७ प्रकृतियों का बंध होता है, उनमें से ज्ञानावरणीय की ५ दर्शनावरणीय की ४, अन्तराय की ५, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र इन १६ को घटाने से एक सातावेदनीय रह जाती है। अन्त के चौदहवें गुणस्थान में किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं होता है। वह बंधरहित अवस्था है। इस तरह सब गुणस्थानों की बन्धप्रकृतियाँ बतलाई। निश्चय नय से आत्मा को कर्मबन्ध से रहित जानना चाहिए।

चैदह गुणस्थानों में १२२ प्रकृतियों का उदय

इक सौ सतरै इक सौ ग्यारै,
सौ अरु सौ, चौ सत्तासीय।
इक्यासी छैहत्तरि बेहत्तरि,
छयासठ अरु साठ उदीय॥
उनसठ सत्तावन ब्यालिस अरु,
बारै प्रकृति उदै है जीय।
चौदै गुणथानक की रचना,
उदयभिन्न तुव सिद्ध सुकीय॥६१॥

अर्थ— मिथ्यात्व गुणस्थान में ११७ प्रकृतियों का उदय होता है। १२२ में से सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थकरप्रकृति इन पाँच प्रकृतियों का उदय इस गुणस्थान में नहीं होता है। दूसरे गुणस्थान में ११९ प्रकृतियों का उदय होता है। पहले गुणस्थान की ११७ में से मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृतियों का उदय नहीं होता है। तीसरे गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय होता है। दूसरे गुणस्थान की १११ प्रकृतियों में से अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रियादिक ४ और स्थावर १, इन ९ व्युच्छिन्नि प्रकृतियों के घटाने से शेष रहीं १०२, उनमें से नरकगत्यानुपूर्वी के बिना (क्योंकि यह दूसरे गुणस्थान में घटाई जा चुकी है) शेष की तीन आनुपूर्वी घटाने से (क्योंकि तीसरे गुणस्थान में मरण न होने से किसी भी आनुपूर्वी का उदय नहीं है) शेष रहीं ९९

और एक सम्यग्मिथ्यात्व का उदय यहाँ मिला। इस तरह इस गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय होता है। चौथे गुणस्थान में 'सौ चौ' अर्थात् १०४ प्रकृतियों का उदय होता है। ऊपर की १०० प्रकृतियों में से व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व के घटाने पर रहीं ९९, इनमें चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति इन पाँच के मिलाने से १०४ हुई। पाँचवें गुणस्थान में ८७ प्रकृतियों का उदय होता है। पूर्व की १०४ प्रकृतियों में से अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनोदय और अयशःकीर्ति इन सत्तरह व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने से ८७ रहती हैं। छठे गुणस्थान में ८१ प्रकृतियों का उदय होता है। पिछली ८७ में से प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यग्गति, तिर्यगायु, उद्योत और नीचगोत्र इन आठ व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने से शेष रहीं ७९, इनमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग मिलाने से ८१ प्रकृतियाँ होती हैं। सातवें में ७६ प्रकृतियों का उदय होता है। पिछली ८१ में से आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि के घटाने से ७६ प्रकृतियाँ रहती हैं। आठवें में ७२ प्रकृतियों का उदय होता है। पिछली ७६ में से सम्यक्त्व प्रकृति, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका ये तीन संहनन, इन चार का उदय नहीं होता है। नववें में ६६ का उदय होता है। पिछली ७२ में से हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा इन छह को घटाने से ६६ रहती हैं। दशवें गुणस्थान में ६० प्रकृतियों का उदय होता है। पिछली ६६ में से स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन छह को घटाने से ६० रहती हैं ग्यारहवें गुणस्थान में ५९ का उदय होता है। पिछली ६० में से एक संज्वलन लोभ का उदय यहाँ घट जाता है। बारहवें में ५७ का उदय होता है। पिछली ५९ में से वज्रनाराच और नाराच घटाने से ५७ होती हैं। तेरहवें गुणस्थान में ४२ प्रकृतियों का उदय होता है। पिछली ५७ में से ज्ञानावरणीय की ५, अन्तराय की, ५, दर्शनावरणीय की ४, निद्रा और प्रचला इस तरह १६ व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने से ४१ रहीं, इनमें तीर्थकर की अपेक्षा से एक तीर्थकर प्रकृति को मिलाने से ४२ हुई। चौदहवें गुणस्थान में १२ का उदय रहता है। पिछली ४२ में से इन तीस व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने से १२ रहती हैं— वेदनीय, वज्रवृषभनाराच, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुण्डक, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक। वे बारह प्रकृतियाँ ये हैं— वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर,

पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र। इस तरह चौदह गुणस्थानों की रचना है। निश्चय से तेरा निज आत्मा इन सब कर्मों के उदय से भिन्न सिद्धस्वरूप है।

चौदह गुणस्थानों में १२२ प्रकृतियों की उदीरणा

इक सौ सतरै इकसौ ग्यारै, सौ सौ चौ सत्तासी जान।
इक्यासी तेहतरि उनहतरि तेसठि सत्तावन मान॥
छपपन चौवन उनतालिस तेरमै अंत नाहीं परवान।
यह उदीरणा चौदै थानक, करै ग्यानबल सो तू जान॥६२॥

अर्थ— ६१ वें कवित्त के अर्थ में चौदह गुणस्थानों में जितनी जितनी प्रकृतियों का उदय बतलाया है, ठीक उतनी उतनी ही प्रकृतियों की उदीरणा होती है और वह इस कवित्त में बतलाई गई है। अन्तर सातवें, आठवें, नववें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें में केवल ३ प्रकृतियों का पड़ता है और तेरहवें में ९ का। वह इस तरह से कि वहाँ सातवें में ७६ प्रकृतियों का उदय होता है और यहाँ ७३ की उदीरणा होती है। क्योंकि चौदहवें गुणस्थान में उदय तो १२ प्रकृतियों का रहता है; परन्तु उदीरणा वहाँ नहीं है। इसलिए उन १२ प्रकृतियों को तेरहवें गुणस्थान की ३० प्रकृतियों में मिलाने से उनकी संख्या ४२ हो गई। जिनमें से तीन साता, असाता और मनुष्यायु तो छठे गुणस्थान में उदीरित होती हैं और शेष ३९ की तेरहवें में उदीरणा होती है। बीच के सातवें, आठवें, नववें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें में इन्हीं तीन प्रकृतियों के कम हो जाने से उदीरित प्रकृतियों की संख्या क्रम से ७३, ६९, ६३, ५७, ५६, ५४ हो जाती है।

हे भव्य, तुझे जानना चाहिए कि चौदह गुणस्थानों में यह उदीरणा ज्ञान के बल से होती है। इसलिए ज्ञान का सम्पादन कर।

चौदह गुणस्थानों में नाना जीवों की अपेक्षा १४८ प्रकृतियों की सत्ता
सवैया इकतीसा

पहलै सौ अड़ताल दूजे मैं सौ पैताल,
तीजेमाहिं सौ सैंताल चौथे मैं अठतालसौ।
पाँचें गुन सौ सैंताल छठैं सातैं आठैं नौमैं,
दसमैं ग्यारमैं उपसमी है छयालसौ॥
आठैं नौमैं सौ अड़तीस दशमैं इकसौ दोय,
बारमैं इकसौ एक आगैं पंद्रै टाल सौ।

तेरें चौदमैं पिचासी सत्ता नास अविनासी,
नमौ लोक घन ऊरध राजू है सैतालसौ॥६३॥

अर्थ— बाँधे हुए कर्म जब तक उदय में नहीं आते हैं किन्तु ज्यों के त्यों बद्ध बने रहते हैं तब तक उस अवस्था को सत्ता कहते हैं। पहले और चौथे गुणस्थान में १४८ प्रकृतियों की सत्ता है। दूसरे गुणस्थान में तीर्थकर, आहारक शरीर, और आहारक अंगोपांग इन तीन को छोड़कर १४५ की सत्ता है। तीसरे में तीर्थकर प्रकृति को छोड़कर और पाँचवें में नरकायु को छोड़कर १४७ प्रकृतियों की सत्ता है। छठे सातवें में और उपशमश्रेणी के आठवें, नववें, दशवें और ग्यारहवें में नरकायु और तिर्यगायु को छोड़कर १४६ की सत्ता है। क्षपकश्रेणीवाले आठवें, नववें गुणस्थानों में ४ अनंतानुबंधी, ३ मिथ्यात्व और ३ आयु (देव पशु और नारक) को छोड़कर १३८ की सत्ता है। क्षपकश्रेणीवाले दशवें में १०२ की सत्ता है। नववें में जो १३८ का सत्त्व है, उसमें से ये ३६ व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ घटाने से १०२ होती हैं— तिर्यग्गति १, तिर्यग्यत्यानुपूर्वी १, विकलत्रय ३, निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला १, स्त्यानगृद्धि १, उद्योत १, आतप १, एकेन्द्रिय १, साधारण १, सूक्ष्म १, स्थावर १, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, नोकषाय ९, संज्वलन क्रोध १, मान १, माया १, नरकगति १ और नरकगत्यानुपूर्वी। बारहवें में १०१ प्रकृतियों की सत्ता है। पिछली १०२ में से एक सूक्ष्मलोभ की सत्ता घट जाती है। आगे तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में 'पंद्रै टालसौ' सौ में से पन्द्रह कम अर्थात् ८५ प्रकृतियों की सत्ता है। उपर्युक्त १०१ में से ज्ञानावरणीय की ५, अन्तराय की ५, दर्शनावरणीय की ४, निद्रा १ और प्रचला १ ऐसे १६ घटाने से ८५ रहती हैं। चौदहवें गुणस्थान में अंत के समय से पूर्व समय में ७२ और अन्त में १३ की सत्ता नाश करके अविनाशी सिद्ध होते हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। वे १४७ राजू घनाकार लोक के ऊर्ध्वभाग में विराजमान होते हैं।

अन्तर्मुहूर्त के जन्म मरणों की गिनती

भू जल पावक पौन साधारण पंच भेद,
सूच्छम वादर दस परतेक ग्यार हैं।
छैहजार बारै बारै जनम मरन धरै,
वे ते चौ इंद्री असी साठ चालिस धार हैं॥
चौइस पंचेंद्री सब छासठ सहस तीन,
सै छत्तीस, सै सैंतीस तेहत्तर सार हैं।
छत्तीस सै पचासी स्वास अधिक तीजा अंस,

नमो नाथ मोहि सब दुखसौं उधार हैं॥६४॥

अर्थ— अलब्धपर्याप्तक जीवों के अन्तर्मुहूर्त में कितने जन्म मरण होते हैं, यह इस पद्य में बतलाया है। जो जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं कर पाता है; किन्तु मुहूर्त के भीतर ही पर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही मर जाता है, उसे अलब्धपर्याप्तक या लब्धपर्याप्तक कहते हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय इन पाँच के सूक्ष्म और वादर के भेद से दश भेद हुए। इनमें एक प्रत्येक वनस्पतिकाय मिलाने से ग्यारह भेद हुए। इनमें एक प्रत्येक वनस्पतिकाय मिलाने से ग्यारह भेद हुए इन ग्यारहों लब्धपर्याप्तक जीवों के अन्तर्मुहूर्त में छह हजार बारह बारह जन्म मरण होते हैं। दो इंद्रिय जीवों के ८०, तेइंद्रिय के ६०, चौइंद्री के ४० और पंचेद्री जीवों के चौबीस चौबीस जन्म मरण होते हैं। इस तरह सब मिलाकर $६०१२ \times ११ + ८० + ६० + ४० + २४ = ६६३३६$ जन्म मरण अन्तर्मुहूर्त में होते हैं। ३७७३ स्वास^{६५} का एक प्रमाण मुहूर्त होता है। एक स्वास में अठारह बार जन्म मरण होता है, इसलिए ६६३३६ जन्म मरण में $९९३३९/१८ = ३६८५$ / ३ स्वास हुए और इन ३६८५ / ३ स्वास हुए और इन ३६८५ / ३ स्वासों का एक अन्तर्मुहूर्त हुआ। मैं अपने नाथ अर्थात् वीतरागदेव को नमस्कार करता हूँ। मेरा इन जन्म मरण के दुःखों से वे ही उद्धार करेंगे।

घाती कर्मों की ४७ प्रकृतियाँ

मति सुत औधि मनपरजै केवलग्यान,
पंच आवरन ग्यानावरनी पंचभेद हैं।
चक्खु औ अचक्खु औधि केवलदरस चारि,
आवरन चारि निद्रा निद्रा खेद हैं॥
प्रचला प्रचलाप्रचला थानगृद्धि नौ भेद,
दर्सनावरनी, मोह अठाईस भेद हैं।
दान लाभ भोग उपभोग बल अंतराय,
पाँच सब सैतालीस घातिया निषेद हैं॥ ६५॥

अर्थ— ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ९, मोहनीय की २८ और अन्तराय की ५ इस तरह घाती कर्मों की सब मिलाकर ४७ प्रकृतियाँ हैं। इन सबको जुदा जुदा बतलाते हैं। ज्ञान को आवरण करनेवाले ज्ञानावरणीय के पाँच भेद हैं— १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मनःपर्ययज्ञानावरण और

^{६५} जो बालक न हो, बृद्ध न हो, आलसी न हो, ऐसे स्वस्थ सुखी मनुष्य के स्वास इस प्रसंग में लिये गये हैं।

केवलज्ञानावरण। दर्शनावरणीय के ९ भेद हैं— १ चक्षुर्दर्शनावरण, २ अचक्षुर्दर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण (ये चार आवरण), ५ निद्रा, ६ निद्रानिद्रा, ७ प्रचला, ८ प्रचला—प्रचला और ९ स्त्यानगृद्धि। मोहनीय के २८ भेद हैं (ये आगे के पद्य में बतलाये हैं)। अन्तराय के ५ भेद हैं— १ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय और ५ वीर्यान्तराय। घाती कर्मों की ये ४७ प्रकृतियाँ निषिध्य हैं— इनको आत्मा से जुदा करना चाहिए।

मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ

अनंतानुबंधी औ अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी,
संज्वलन चारौ क्रोध मान माया लोभ है।
हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा,
नारी नर षंढ पचीस चारितको छोभ है॥
मिथ्यात समै मिथ्यात समै प्रकृतिमिथ्यात,
तीनों दर्शनमोह दर्शनकौ चोभ है।
अठाईस मोहनीय जीवनिकौ मोहत हैं,
नासै जथाख्यात सम्यक छायक सोभ है॥६६॥

अर्थ— मोहनीय कर्म के २८ भेद हैं, जिनमें से २५ चारित्रमोहनीय के हैं और ३ दर्शनमोहनीय के हैं। १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ अप्रत्याख्यानावरणीय— क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ प्रत्याख्यानावरणीय—क्रोध, १० मान, ११ माया, १२ लोभ, १३ संज्वलन—क्रोध, १४ मान, १५ माया, १६ लोभ, १७ हास्य, १८ रति, १९ अरति, २० शोक, २१ भय, २२ जुगुप्सा (ग्लानि), २३ पुरुषवेद, २४ स्त्रीवेद, २५ नपुंसकवेद ये पचीस चारित्र में क्षोभ करनेवाले चारित्र मोहनीय के भेद हैं— १ मिथ्यात्व, २ सम्यग्मिथ्यात्व और ३ सम्यक्प्रकृति ये तीन दर्शन में चुभनेवाले दर्शनमोह के भेद हैं। इस मोहनीय कर्म के नाश होने पर यथाख्यात संयम अथवा क्षायिक चारित्र की प्राप्ति होती है। इन गुणों से जीव शोभायमान होता है।

अघाती कर्मों की १०१ प्रकृतियाँ और आठ कर्मों की स्थिति

साता औ असाता दोइ वेदनी नरक पसु,

नर सुर आव च्यारि ऊँच नीच गोत है।
 नाम की तिरानू एक सत एक अघातिया,
 आदि तीन अंतराय थिति तीस होत है॥
 नाम गोत बीस मोहनी सत्तरि कोराकोरी,
 दधि आवकी सागर तेतीस उदोत है।
 वेदनी चौबीस घरी सोलै नाम गात पाँचौं,
 अंतर मुहूरत, विनासै ग्यानजोत है॥६७॥

अर्थ— वेदनीय कर्म की साता और असाता ये २ प्रकृतियाँ, आयुर्कर्म की नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु ये ४ प्रकृतियाँ, गोत्र कर्म की उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये २ और नामकर्म की ९३ इस तरह चार अघाती कर्मों की सब मिलाकर १०१ प्रकृतियाँ हैं।

आदि के तीन कर्म अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और वेदनीय और अन्त का अन्तराय; इन चारों की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागर की है। नाम कर्म की और गोत्र कर्म की २० कोड़ाकोड़ी सागर की, मोहनीय की ७० कोड़ाकोड़ी सागर की और आयु कर्म की ३३ सागर की उत्कृष्ट स्थिति है। वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति २४ घड़ी अर्थात् बारह मुहूर्त, नाम कर्म और गोत्र कर्म की सोलह सोलह घड़ी, और शेष ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय और आयुर्कर्म इन पाँचों की अन्तर्मुहूर्त है। ज्ञानज्योति अर्थात् ज्ञानी महात्मा इन सबका नाश करते हैं।

नामकर्म की ९३ प्रकृतियाँ

तन बंधन संघात वर्ण रस जात पंच,
 संसथान संहनन षट आठ फास हैं।
 गति आनुपूरवी है चारि दो विहाय गंध,
 अंग तीनि पैसठि ये त्रस थूल भास हैं॥
 पर्यापति थिर सुभ सुभग प्रतेक जस,
 सुसुर आदेय दो दो निरमान स्वास हैं ।
 अपघात परघात अगुरु लघु आताप,
 उदोत तीर्थकरकौ बन्दौ अघनास हैं॥ ६८॥

अर्थ— नाम कर्म की ९३ प्रकृतियाँ हैं, जिनमें से ६५ पिण्डप्रकृतियाँ हैं और २८ अपिण्डप्रकृतियाँ हैं। पिण्डप्रकृतियाँ उनको कहा है कि जो एक एक भेद में अनेक अनेक पाई जाती हैं। जिनके जुदा जुदा स्वतन्त्र नाम गिनाये गये हैं वे अपिण्डप्रकृति कही जाती हैं।

पहले अपिण्ड प्रकृतियाँ बतलाते हैं। पाँच तन अर्थात् शरीर कर्म— १ औदारिक शरीर, २ वैक्रियिक शरीर, ३ आहारक शरीर, ४ तैजस शरीर, और ५ काम्मण शरीर। पाँच बन्धन कर्म— १ औदारिक बन्धन, २ वैक्रियिक बन्धन, ३ आहारक बन्धन, ४ तैजस बन्धन, ५ काम्मण बन्धन। पाँच संघात हैं— १ औदारिक शरीर संघात, २ वैक्रियिक शरीर संघात, ३ आहारक संघात, ४ तैजस संघात, ५ काम्मण संघात। पाँच वर्णकर्म हैं— १ काला, २ पीला, ३ लाल, ४ नीला, ५ सफेद। पाँच रसकर्म हैं— १ खट्टा, २ मीठा, ३ कडुआ, ४ तीखा, ५ कसैला। पाँच जाति कर्म हैं— १ एकेन्द्रिय जाति, २ दोइन्द्रिय जाति, ३ तेइन्द्रिय जाति, ४ चौइन्द्रिय जाति, ५ पंचेन्द्रिय जाति। छह संस्थान कर्म हैं— १ समचतुरस्र संस्थान, २ न्यग्रोध परिमण्डल, ३ वामन, ४ स्वातिक, ५ कुब्जक, ६ हुण्डक। छह संहनन, कर्म हैं— १ वज्रवृषभनाराच संहनन, २ वज्रनाराच संहनन, ३ नाराच संहनन, ४ अर्द्धनाराच संहनन, ५ कीलक संहनन, ६ असंप्राप्तासृपाटिक संहनन। आठ स्पर्श कर्म हैं— १ ठण्डा, २ गरम, ३ हलका, ४ भारी, ५ नरम, ६ कठोर, ७ चिकना, ८ खुरदरा। चार गति कर्म हैं— १ नरक गति, २ तिर्यच गति, ३ मनुष्य गति, ४ देवगति। चार आनपूर्वी कर्म हैं— १ नरकगत्यानुपूर्वी, २ तिर्यचगत्यानुपूर्वी, ३ मनुष्यगत्यानुपूर्वी, ४ देवगत्यानुपूर्वी। दो विहायोगति कर्म हैं— १ औदारिक अंगोपांग, २ दुर्गन्धं तीन अंगोपांग कर्म हैं— १ औदारिक अंगोपांग, २ वैक्रियिक अंगोपांग और ३ आहारक अंगोपांग। अब २८ अपिण्ड प्रकृतियाँ बतलाते हैं— त्रस, २ स्थावर, ३ स्थूल, ४ सूक्ष्म, ५ पर्याप्त, ६ अपर्याप्त, ७ स्थिर, ८ अस्थिर, ९ शुभ, १० अशुभ, ११ सुभग, १२ दुर्भग, १३ प्रत्येक, १४ साधारण, १५ यशःकीर्ति, १६ अयशःकीर्ति, १७ सुस्वर, १८ दुःस्वर, १९ आदेय, २० अनादेय, २१ निर्माण, २२ श्वासोच्छ्वास, २३ अपघात, २४ परघात, २५ अगुरुलघु, २६ आतप, २७ उद्योत और तीर्थकर। तीर्थकरदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

जम्बूद्वीप के पूर्व पश्चिम का वर्णन

जंबूदीप एक लाख मेरु दस ही हजार,
भद्रसाल दो वन सहस्र चवालीसके।
बाकी छयालीस आधौं आध दोनौं ही विदेह,
देवारन्य वन उनतीस सै वाईसके॥
तीनौं नदी पौनै चारि सत चारौं ही वख्यार,
दो हजार आठौं ही विदेह बच ईसके।
सत्तरै सहस्र सात सत तीनि जो जनके,
नमौ चारि तीर्थकर स्वामी जगदीस के॥६९॥

अर्थ— जम्बूद्वीप पूर्व पश्चिम एक लाख योजन⁶⁶ चौड़ा है। इसके बीच में सुदर्शन मेरु है, जिसका चारों तरफ गोलाकार विस्तार दशहजार योजन का है। इसके पूर्वपश्चिम भद्रशाल नाम का एक एक वन है, जो प्रत्येक बावीस हजार योजन के विस्तारवाला है, इस तरह उन दोनों का विस्तार चवालीस हजार योजन में है। इस तरह मेरु और दोनों भद्रशाल वनों का विस्तार मिलाकर ५४ हजार योजन हुआ। इसको एक लाख में से घटाया, तो बाकी छियालीस हजार योजन रहे। इनमें तेईस तेईस हजार के दोनों विदेह हैं। इस तरह जम्बूद्वीप का एक लाख योजन पूर्व पश्चिम विस्तार है।

अब भद्रशाल वन से लवणसमुद्र के तट तक जो विदेह क्षेत्र है, उसका विशेष वर्णन करते हैं— विदेह क्षेत्र में लवण समुद्र के तट के लगा हुआ देवारण्य वन है, जो २९२२ योजन का है। और तीन नदियाँ हैं, जो प्रत्येक एकसौ पच्चीस पच्चीस योजन की हैं। तीनों मिलाकर ३७५ योजन की हैं। चार वक्षारगिरि नाम के पर्वत हैं, जो दो हजार योजन के हैं अर्थात् प्रत्येक पाँच पाँचसौ योजन का है। आठ विदेह क्षेत्र हैं, जिनका विस्तार १७७०३ योजन का है प्रत्येक क्षेत्र २२१२ ^१/_८ योजन का है। इस पूर्व विदेह के वन, नदी, पर्वत और क्षेत्रों की चौड़ाई का जोड़ तेईस हजार योजन हो जाता है।

इसी तरह पश्चिम विदेह की भी रचना है। नदी पर्वतादिकों का विस्तार सब ऐसा ही है। नामादि का भेद है। नीलवन्त पर्वत पर केसरी नाम का हृद (तालाब) है। उस में से सीता नदी दक्षिणमुख होकर निकली है। वह माल्यवंत गजदन्त पर्वत में से होकर, सुदर्शनमेरु का आधा चक्कर देती हुई, पूर्ववाहिनी होकर, पूर्व विदेह के बची में से लवणसमुद्र में जाकर मिली है। इस कारण पूर्वविदेह के आठ क्षेत्रों के सोलह क्षेत्र हो गये हैं। ऐसे ही पश्चिम विदेह में से सीतोदा नदी बही है और उससे पश्चिम विदेह के भी सोलह क्षेत्र हो गये हैं। दोनों विदेहों के सब मिलाकर ३२ क्षेत्र हैं।

पूर्व विदेह में श्रीमंधर और युग्मंधर तथा पश्चिमविदेह में बाहु और सुबाहु इस तरह चार तीर्थकर विद्यमान हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। वे तीनों लोकों के स्वामी हैं।

जम्बूद्वीप के दक्षिण उत्तर का वर्णन

जंबूदीप दच्छिन उत्तर लाख जोजनकौ,

⁶⁶ महायोजन जो कि दो हजार कोश का होता है।

भाग एकसौ नव्वै एक भरत भाइए।
दोय हिमवन सैल चारि हेमवत खेत,
महा हिमवन आठ सोलै हरि गाइए॥
बत्तीस निषध ए तिरेसठ उधै त्रेसठ,
बीच मैं विदेह भाग चौंसठ बताइए।
भाग पाँच सै छवीस कला छह उन्निसकी,
अठत्तर चैत्यालय सदा सीस नाइए॥७०॥

अर्थ— जम्बूद्वीप का दक्षिण उत्तर विस्तार एक लाख योजन का है। इसके १९० भाग करने से जो एक भाग होता है, उतना भरतक्षेत्र है। यह एक भाग ५२६ योजन और छह कला (अपूर्ण उन्नीस) के बराबर है। भरतक्षेत्र का आकार धनुष सरीखा है। इसके उत्तर में हिमवान नाम का पर्वत है। वह १९० में से दो भाग प्रमाण है। अर्थात् उसका दक्षिण उत्तर विस्तार भरतक्षेत्र से दूना १०५२ योजन १२ कला (बारह अपूर्ण उन्नीस) है। हिमवान से आगे (उत्तर में) हैमवत क्षेत्र है। वह चार भाग प्रमाण अर्थात् २१०५ योजन और ५ कला है। उसके आगे महाहिमवान पर्वत आठ भाग प्रमाण $४२१०^{\circ}/१९$ योजन है। महाहिमवान से उत्तर में (आगे) हरिक्षेत्र है, वह सोलह भाग प्रमाण $८४२१^{\circ}/१९$ योजन है। आगे निषधपर्वत है, वह बत्तीस भाग प्रमाण अर्थात् $१६८४२^{\circ}/१९$ योजन है। इस तरह लवणसमुद्र से विदेह क्षेत्रतक सब मिलाकर ६३ भाग $३३१५७^{\circ}/१९$ हुए। इतना ही विस्तार मेरु से उत्तर की ओर विदेह से लवण समुद्र तक समझना चाहिए। दोनों का जोड़ हुआ १२६ भाग प्रमाण। अब रह गया बीच का विदेहक्षेत्र, सो उसका दक्षिण उत्तर विस्तार १९० में ६४ भाग प्रमाण अर्थात् $३३६८४^{\circ}/१९$ है। तब $६३+६३+६४=१९०$ या $३३१५७^{\circ}/१९ +३३६१५७^{\circ}/१९+३३६८४^{\circ}/१९= १०००००$ योजन हो गये। एक भाग ५२६ योजन ६ कला का होता है। एक योजन की १९ कला मानी हैं। जम्बूद्वीप में वीतराग देव के ७८ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। उन्हें निरन्तर मस्तक नवाना चाहिए— नमस्कार करना चाहिए।

अधोलोक के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या

सात नर्क भूमि उनचास पाथरे निवास,
इंद्रक भी उनचास बीच माहिं बिले हैं।
पहलौ सीमंत चारि दिसा सेनी उनचास,
चारि विदिसा मैं अठताली भेद निले हैं॥
आठ दिस सेनीबंध तीनिसै अठासी भए,
आगैं आठ आठ घटे अंत चारि मिले हैं।

सब छयानवै सै चारि जोजन असंख धारि,
दया धरै धर्म करै तिनीं दुख गिले हैं ॥७१॥

अर्थ— नरक भूमियाँ सात हैं। उन सब में ४९ पाथड़े (उत्तरभेद) हैं। प्रत्येक पाथड़े में कूप के आकार का गोल एक एक इन्द्रक है, इसलिए उनकी संख्या भी ४९ है। उनके बीच में बिल हैं। पहली भूमि में बिल हैं। पहली भूमि में १३ पाथड़े हैं, उनमें पहिला सीमन्तक नाम का पाथड़ा या पटल है। उसकी चारों दिशाओं में उनचास उनचास और विदिशाओं में अड़तालीस अड़तालीस श्रेणीबद्ध बिल हैं। सो दिशाओं के १९६ और विदिशाओं के १९२ इस तरह आठों दिशाओं के मिलकर ३८८ बिल हुए। यह एक पटल का वर्णन हुआ। शेष ४८ पटल या पाथड़े रहे, सो उनके बिलों की संख्या क्रम से आठ आठ घटती हुई है। अर्थात् दूसरे की ३८०, तीसरे की ३७२, चौथे की ३६४ और आगे इसी तरह आठ आठ घटती हुई चली गई है, सो अन्त के पटल में चार बिल रह गये हैं। इस अन्त के पटल का नाम अप्रतिष्ठान इन्द्रक है। इसकी विदिशाओं में बिल नहीं हैं, चार दिशाओं में ही एक एक बिल है। इन सब उनचासों पटलों के बिलों की संख्या ९६०४ है और उनका विस्तार असंख्यात योजन है। जो जीव दयाभाव धारण करते हैं और धर्म करते हैं, वे इन नरकों के महान् दुःखों से बचते हैं।

ऊर्ध्वलोक के श्रेणीबद्ध विमान

ऊरध तिरिसठ पटल कहे आगम मैं,
त्रेसठ ही इन्द्रक विमान बीच जानिए।
पहलौ जुगल ताके पहलेकौ रिजु नाम,
जाकी चारि दिसा सेनि बासठ प्रमानिए॥
चारौ दोसै अड़तालीस आगै घटे चारि चारि,
अंत रहे चारि ऊँचे चारि ठीक ठानिए।
सेनीबंध ठत्तर सै सोलै जोजन असंख,
सिद्ध बारै जोजनपै ध्यानमाहिं आनिए ॥७२॥

अर्थ— ऊर्ध्वलोक में अर्थात् स्वर्गों में ६३ पटल हैं। प्रत्येक पटल के बीच में एक एक इन्द्रक विमान है। अर्थात् इन्द्रक विमानों की संख्या भी ६३ है। पहले जुगल के अर्थात् सौधर्म ईशान स्वर्ग के ३१ पटल हैं। उनमें के पहले पटल का नाम ऋजु विमान है। इस विमान की चारों दिशाओं में बासठ बासठ श्रेणीबद्ध विमान हैं अर्थात् सब दिशाओं के मिलाकर २४८ विमान हुए। यह एक पटल का वर्णन

हुआ। इसके ऊपर जो शेष ६२ पटल है, उनके विमानों की संख्या ऊपर ऊपर क्रम से चार चार कम होती गई है अर्थात् दूसरे पटल में २४४, तीसरे में २४० और चौथे में २३६ इस क्रम से है। अन्त के सर्वार्थसिद्धि पटल में केवल चार विमान हैं और उसके नीचे के सम्पूर्ण पटलों के सम्पूर्ण विमानों की संख्या ७८१६ है। वे असंख्यात योजन की ऊँचाई पर अनन्त सिद्ध भगवान् विराजमान हैं, उनको ध्यान में लाना चाहिए अर्थात् उनका निरन्तर ध्यान करना चाहिए।

लवणोदधिके १००८ कलशों का वर्णन

लौनोदधि बीच चारि दिसामाहिं चारि कूप
कहै हैं मृदंग जेम तिनिकौ प्रमान है।
पेट और ऊँचे एक एक लाख जोजन के,
नीचै औ मुख ताकौ दस हजार मान है॥
चारि विदिसामैं चारि पेट और ऊँचे दस,
हजार एक नीचे औ मुखकौ बखान है।
अन्तर दिसा हजार पेट ऊँचे हैं हजार,
नीचै और मुख सौके धन्य जैनग्यान है॥७३॥

अर्थ— जम्बूद्वीप के आसपास जो लवणोदधि समुद्र है, उसके बीच में चारों दिशाओं में चार कूप हैं। उनका आकार मृदंग के समान है। उनका पेट अर्थात् मध्य की चौड़ाई और ऊँचाई एक एक लाख योजन की हैं तथा वे नीचे तली में और मुँह पर दश दश हजार योजन के विस्तारवाले हैं। दिशाओं के सिवाय विदिशाओं में भी चार कूप हैं। उनका पेट और ऊँचाई दश दश हजार योजन की और नीचे का तथा मुख का विस्तार हजार हजार योजन का है। दिशा और विदिशाओं के बीच में आठ अन्तर दिशाएँ हैं, उनमें एक हजार कूप हैं। इनके पेटों का विस्तार और ऊँचाई हजार हजार योजन की है और नीचे का तथा मुँह का विस्तार सौ योजन का है। इस तरह सब मिलाकर १००८ कूप या बड़वानल हैं। ऐसे ऐसे परोक्ष विषयों का बतलानेवाला जिन भगवान् का ज्ञान धन्य है।

त्रेसठ इंद्रक विमान

पैंतालीस लाखकौ है इंद्रक रिजूविमान,
सर्वार्थ सिद्ध अंत एक लाख का कहा।
चवालीस घटे हैं त्रेसठ मैं वासठि ठौर,
ऊँचे ऊँचे एक एक केता घटती लहा॥

सत्तर हजार नौसै सतसठ जोजन है,
तेइस अधिक भाग इकतीसका गहा।
तेसठ इंद्रक नाम तेसठ ही जिनधाम,
बंदौ मनवचकाय तिनकी सोभा महा॥७४॥

अर्थ— पहले युगल का जो ऋजुविमान नाम का पटल है, वह ४५ लाख योजन का है और अन्त का सर्वार्थसिद्धि नाम का पटल है एक लाख योजन का है। स्वर्गलोक के सारे पटलों की संख्या ६३ है। इस तरह ६२ स्थानों में ४४ लाख क्रम से कम हुए हैं। तो अब देखना चाहिए कि एक दूसरे से कितने कितने कम होते गये हैं— ४४ लाख में यदि ६२ स्थानों का भाग दिया जायगा, तो यह कमी मालूम हो जायगी। $44000000/92 = 47826086\frac{2}{3}/31$ अर्थात् सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ और एक योजन के ३१ भागों में से २३ भाग; इतना विस्तार ऊपर के पटलों का कम होता गया है। इन ६३ इन्द्रकों में ६३ ही अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, जो अतिशय शोभायुक्त हैं। उनकी मैं मन वचन काय से वन्दना करता हूँ।

१२० प्रकृतियों का बंध और उदय

देव गति आव आनुपूरवी प्रकृति तीन,
वैक्रियक अंग आहारक अंग चार हैं।
अजस ए आठौं ऊँचै बँधे नीचै उदै दैहिं,
संजुलन लोभ बिना पंदरै निहार हैं॥
हास रति भै गिलानि नर—वेद नर—आव,
सूच्छम अपर्जापति साधारण धार हैं।
आतप मिथ्यात ए छबीस बंध उदै साथ,
नीचै बंध ऊँचै उदै छीयासी विचार हैं॥७५॥

अर्थ— देवगति, देवायु और देवगत्यानुपूर्वी ये तीन; वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग ये चार और अजस; सब मिलाकर हुई आठ प्रकृतियाँ। ये आठौं ऊपर के गुणस्थानों में बंधती हैं और नीचे के गुणस्थानों में उदय आती हैं। संज्वलन लोभ को छोड़कर १५ कषाय अर्थात् अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया ये पन्द्रह और हास्य, रति भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, पुरुषायु, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आतप और मिथ्यात्व ये ग्यारह इस तरह २६ प्रकृतियाँ जिस गुणस्थान में बंधती हैं, उसी में उदय आती हैं। इन $26+6 = 32$ प्रकृतियों को छोड़कर शेष

जो ८६ प्रकृतियाँ हैं, उनका बंध नीचे के गुणस्थानों में होता है और उदय ऊँचे के गुणस्थानों में होता है।

हुण्डक का पहले गुणस्थान में, वामन कुब्जक, स्वातिक और न्यग्रोधपरिमण्डल का दूसरे गुणस्थान पर्यन्त और समचतुरस्र का आठवें गुणस्थान के छठे भाग पर्यन्त, बन्ध होता है; परन्तु उदय इन छहों संस्थानों का तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है।

वज्रवृषभनाराच का चौथे गुणस्थानतक, वज्रनाराच नाराच, अर्ध नाराच और कीलक का दूसरे गुणस्थान तक और असंप्राप्तासृपाटिक का बंध पहिले गुणस्थान में है और उदय अर्धनाराच, कीलक, स्फाटिक का सातवें गुणस्थान तक नाराच, वज्रनाराच का ग्यारहवें तक और वज्रवृषभनाराचका तेरहवें गुणस्थानतक है।

निर्माण का बंध आठवें गुणस्थान के छठे भागतक और उदय तेरहवें गुणस्थानतक होता है।

अप्रशस्तविहायोगति का बंध दूसरे गुणस्थान तक और प्रशस्तविहायोगति का आठवें गुणस्थान के छठे भाग पर्यन्त होता है और उदय इन दोनों का तेरहवें गुणस्थानतक होता है।

उद्योत का बंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय पाँचवें गुणस्थान तक होता है।

अगुरुलघु, अपघात, परघात और श्वासोच्छ्वास का बन्ध आठवें के छठे भाग तक और उदय तेरहवें तक होता है।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका बंध दूसरे गुणस्थान तक और उदय छठे तक होता है।

नरक आयु, नरक गति और नरकगत्यानुपूर्वी का बंध पहिले गुणस्थान में होता है और उदय चौथेतक होता है। नरकगत्यानुपूर्वी का उदय सासादन और मिश्र गुणस्थान में नहीं होता है।

तिर्यच गति और तिर्यच आयु का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक और उदय पाँचवें गुणस्थान तक होता है।

तिर्यच गत्यानुपूर्वी का बंध दूसरे गुणस्थान तक और उदय मिश्र गुणस्थान छोड़कर चौथे गुणस्थान पर्यन्त होता है।

मनुष्यगति और मनुष्यायु का बन्ध चौथे गुणस्थानतक और उदय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है। तीसरे में आयु बन्ध नहीं होता।

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय का बंध पहले गुणस्थान में होता है और उदय दूसरे गुणस्थान तक होता है।

औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग का बंध चौथे गुणस्थानतक और उदय चौदहवें के अन्तपर्यन्त है।

पंचेन्द्रिय का बंध आठवें गुणस्थान के छठे भागतक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

तैजस कार्माण का बन्ध आठवें के छठे भाग तक है और उदय चौदहवें के उपान्त्य समय तक है।

ज्ञानावरण की ५ अन्तराय की ५ और दर्शनावरण की ४ प्रकृतियों का बन्ध दशवें पर्यन्त और उदय बारहवें के अन्त समय तक होता है।

यशः कीर्ति और उच्च गोत्र का बंध दशवें गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थान के अन्त तक है।

सातावेदनीय का बंध तेरहवें गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

नीचगोत्र का बंध पहले गुणस्थानतक और उदय पाँचवें गुणस्थान तक है।

असाता वेदीनय का बंध छठे गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

नपुंसक वेद का बंध पहले गुणस्थान में है और उदय नववें गुणस्थान के चौथे भाग तक है।

संज्वलन लोभ का बंध नववें गुणस्थान पर्यन्त और उदय दशवें गुणस्थान तक है।

अरति शोक का बंध छठे गुणस्थान तक और उदय आठवें गुणस्थान तक है।

निद्रा प्रचला का बन्ध आठवें गुणस्थान के पहले भाग तक और उदय बारहवें तक है।

स्थावर का बंध पहले गुणस्थान में और उदय दूसरे गुणस्थान तक है।

त्रस, बादर और पर्याप्त का बंध आठवें के छठे भाग तक और उदय चौदहवें पर्यन्त है।

प्रत्येक शरीर का बन्ध आठवें के छठे भाग तक और उदय तेरहवें तक है।

अस्थिर अशुभ का बन्ध छठे तक और उदय तेरहवें तक होता है।

स्थिर, शुभ और सुस्वर का बंध आठवें के छठे भाग तक और उदय तेरहवें गुणस्थान तक है।

सुभग और आदेय का बंध आठवें के छठे भाग तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय का बंध दूसरे गुणस्थान तक और उदय दुर्भग अनादेय का चौथेतक दुस्वर का तेरहवें गुणस्थान तक है।

तीर्थकर प्रकृति का बन्ध चौथे गुणस्थान से आठवें के छठे भाग तक और उदय तेरहवें चौदहवें गुणस्थान तक है।

पंचपरावर्तन का स्वरूप

भाव परावर्तन अनंत भाग भवकाल,
भव परावर्तन अनंत भाग काल है।
काल परावर्तन अनन्त भाग खेत कह्यौ,
खेतकौ अनन्त भाग पुग्गल विसाल है॥
ताकौ आधौ नाम अर्ध पुग्गल परावर्तन,
फिरनौ रह्यौ है याहि ग्यानी ग्यान भाल है।
ताही समै सम्यक उपजिवेकौ जोग भयो,
और कहा समकित लरकौका ख्याल है॥७६॥

अर्थ— कर्मबंधों के करनेवाले जितने प्रकार के भाव हैं, उन सबको मिथ्याती जीव क्रमपूर्वक जितने समय में अनुभव करता है उतने काल को एक भावपरावर्तन काल कहते हैं। इस भावपरावर्तन का जितना काल है, उसका अनन्तवाँ भाग काल भवपरावर्तन का है। नरकगति तथा देवगति का जघन्य आयु दशहजार वर्ष का और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर का; मनुष्यगति तिर्यचगति का जघन्य आयु अन्तर्मुहर्त का और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य का है। इन चारों गतियों का जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक आयु क्रमपूर्वक धारण करने में आयु के जितने भेद हो सकते हैं, उन सबको यथाक्रम पूर्ण करने में जितना समय लगता है, उसे एक भवपरावर्तन⁶⁷ का काल समझना चाहिए। इस भवपरावर्तन के काल से अनन्तवाँ भाग काल कालपरावर्तन का है। बीस कोड़ा कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। इस काल के जितने समय हैं, उन सब समयों में क्रम से जन्म मरण धारण करने को एक कालपरावर्तन कहते हैं। इस कालपरावर्तन के काल से अनन्तवाँ भाग काल क्षेत्रपरावर्तन का होता है। क्षेत्र परावर्तन दो प्रकार का है, एक स्वक्षेत्रपरावर्तन और दूसरा परक्षेत्रपरावर्तन। सूक्ष्मनिगोद लब्धपर्याप्त की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग है और महामच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लम्बी, पाँचसौ योजन चौड़ी और अढाई सौ योजन ऊँची है। सो उक्त जघन्य अवगाहना से लेकर उत्कृष्ट अवगाहना तक क्रम से एक एक प्रदेश अधिक अवगाहना के शरीर को लेकर जन्म मरण करे को एक स्वक्षेत्रपरावर्तन कहते हैं। सुमेरु पर्वत की जड़ के नीचे मध्य के आठ प्रदेश हैं। उन आठ प्रदेशों को अपने शरीर के आठ मध्य प्रदेश बनाकर जघन्य अवगाहन को धारण करके उत्पन्न हो तथा उसी अवगाहना को लेकर जितने उसके आत्मप्रदेश हैं उतनी ही बार जन्म मरण करे। इसके बाद उनसे एक एक प्रदेश हटकर क्रमपूर्वक तीन लोक के असंख्यात प्रदेशों में जन्म मरण करने का नाम एक परक्षेत्रपरावर्तन है। स्वक्षेत्र और परक्षेत्रपरावर्तन के काल के जोड़ को एक क्षेत्रपरावर्तन का काल समझना चाहिए। इस क्षेत्रपरावर्तन के काल का अनन्तवाँ भाग काल पुद्गलपरावर्तन का है अनन्त कर्म और नोकर्म पुद्गल परमाणुओं को क्रमपूर्वक एक के बाद एक ग्रहण करके छोड़ने को एक पुद्गल परावर्तन कहते हैं। इसका दूसरा नाम द्रव्यपरावर्तन भी है।

⁶⁷ यहाँ पर यह विशेषता है कि नरक गति में तो ३३ सागर की उत्कृष्ट आयुष्य ली जाती है; परन्तु देवगति की उत्कृष्ट न लेकर केवल ३१ सागर तक की लेनी चाहिए। क्योंकि नवग्रेवैयक से उपर जो ३१ सागर से अधिक आयुष्यवाले देव होते हैं, वे सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं और इसी कारण दो सागर के जितने समय होते हैं उतने बार उन्हें फिर संसार में जन्म धारण करने का प्रसंग प्राप्त नहीं होता।

पुद्गलपरावर्तन के आधे काल को अर्धपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। ह जीव संसार में मिथ्यात्व परिणाम से अनन्तवार अनन्त परावर्तन करता है। जब इसका अर्धपुद्गलपरावर्तन काल बाकी रह जाता है, तब ज्ञानी जानता है कि इसकी काललब्धि आ गई है— इसकी योग्यता सम्यक्त्व के उत्पन्न होने की हो गई है। यदि अर्धपुद्गलपरावर्तन से एक समय भी अधिक भ्रमण शेष रहा हो, तो सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ऐसा नियम है। जिस जीव को सम्यक्त्व हो जाता है, वह अन्तर्मुहूर्त से लेकर अर्धपुद्गलपरावर्तन के काल के भीतर किसी भी समय में अवश्य मुक्त हो जाता है।

इस तरह सम्यक्त्व का पाना बहुत कठिन है। इसको पा लेना कुछ लड़कों का खेल थोड़े ही है।

पुनः पंचपरावर्तन

भावपरावर्तन अनंत जो करै हैं जीव,
 एक भावतै अनंत भव परावर्त हैं।
 एक भौसेती अनंत कालपरावर्त करै,
 कालतै अनंत खेतपरावर्त कर्त हैं॥
 एक खेततै अनंत पुद्गलपरावर्तन,
 पंच फेरीविषै आप मिथ्यावस पर्त हैं।
 सातकौं विनास जिन्है सम्यक प्रकास तेई,
 दर्ब खेत काल भव भावतै निकर्त हैं॥७७॥

अर्थ— जीव संसार में मिथ्यात्व के वशीभूत होकर अनन्त भावपरावर्तन करते हैं और जितने समय में एक भावपरावर्तन होता है, उतने में अनन्त भवपरावर्तन हो जाता है। क्योंकि, भाव परावर्तन में सब प्रकार के कर्मबंध का कारण आत्मभाव क्रम से उत्पन्न होकर कर्म बाँधता है; किन्तु दूसरे परावर्तनों में एक एक कर्म के भोग की ही मुख्यता रहती है अथवा पुद्गल परावर्तन में प्रदेशबंध मात्र की ही मुख्यता रहती है। क्योंकि एक समय में मिथ्यात्व भाव से जितने कर्म बँधते हैं, उनके क्षय करने के लिए अनन्त भवपरावर्तन करना पड़ते हैं और एक भव में जो कर्म बँधते हैं, उनके दूर करने को अनन्तकालपरावर्तन करना पड़ते हैं। अनन्त संख्या के अनन्त भेद हैं। जितने समय में एक कालपरावर्तन पूरा होता है, उतने में अनन्त क्षेत्रपरावर्तन हो जाते हैं। एक क्षेत्र के बाँधे हुए कर्म दूर करने को अनन्त पुद्गलपरावर्तन करना पड़ते हैं। इस तरह जीव आप पंचपरावर्तनरूप फेरा में अर्थात् चक्कर में पड़ा है— अनन्त बार जन्मता है और अनन्त बार मरता है। जिनके अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया,

लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों का विनाश हो गया है; अतएव क्षायिक सम्यक्त्व का प्रकाश हो गया है, वे ही जीव इस द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूप पंच परावर्तनों के चक्कर से निकल पाते हैं।

पाँच लब्धियाँ

थावरतै सैनी होय ए ही खय उपसम है,
दान पूजा उद्यत विसोही उपयोग है।
गुरु उपदेस तत्त्वग्यान सो ही देसना है,
अंत कोराकोरी कर्म की थिति प्रायोग है।
जगमै अनंत बार चारि लब्धि पाई इनि,
कर्नलब्धि विना समकितकौ न जोग है।
अधो अपूरव अनिवृत्त कर्न तीन करै,
मिथ्यामाहिं पीछै चौथा सम्यक नियोग है॥७८॥

अर्थ— अनादि मिथ्यादृष्टी या सादि मिथ्यादृष्टी जीव को बहुत काल से एकेन्द्री में भ्रमण करते करते, समय पाकर स्थावर से निकलकर सैनीपंचेन्द्रियत्व की प्राप्ति होने को क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। लब्धिशब्द का अर्थ प्राप्ति है। शुभ कर्म के उदय से दान पूजादि शुभ कार्यों के करने के लिए उद्यत होने को विसोही या विशुद्धि लब्धि कहते हैं। सद्गुरु के उपदेश से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होने को देशनालब्धि कहते हैं।

काल पाकर व्रत धारण करके और उपवासादि तपश्चर्या अथवा और भी किसी प्रकार आयुर्कर्म के सिवा शेष सातों कर्मों की स्थिति को अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर देना सो प्रयोग्य लब्धि है।

ये चारों लब्धियाँ इस जीव को यद्यपि अनन्त बार हुई हों; परन्तु पाँचवीं करणलब्धि जब तक नहीं हुई हो, तब तक इस जीव को सम्यक्त्व का लाभ नहीं होता। क्योंकि करणलब्धि के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा नियम है।

करण नाम परिणामों का है। जब मिथ्याती जीव सम्यक्त्व के सन्मुख होता है, उस समय उसके परिणाम अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप होते हैं। जिस करण में उपरितनसमयवर्ती तथा अधस्तनसमयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश तथा विसदृश हों, उसे अधःकरण कहते हैं। जिसमें उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते जावें अर्थात् भिन्नसमयवर्ती जीवों के परिणाम सदा विसदृश ही हों

और एक समयवर्ती जीवों के सदृश हो और विसदृश भी हों, उसको अपूर्वकरण कहते हैं। और जिसमें भिन्नसमयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवों के सदृश ही हों, उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। ये तीनों प्रकार के परिणाम उत्तरोत्तर अधिक अधिक विशुद्ध होते जाते हैं, इसी से इनमें परस्पर भेद माना गया है। इन तीन करणों के कर चुकने पर सम्यक्त्व होता है।

नन्दीश्वर द्वीप

एक सौ तिरेसठ किरोर चवरासी लाख,
जोजन का चौरा दीप बावन पहार हैं।
दिसा चारि अंजन जोजन चौरासी हजार,
सोलै दधिमुख जोजन दस हजार हैं॥
रतिकर हैं बत्तीस जोजन हजार एक,
लंबे चौरे ऊँचे सब ढोल के अकार हैं।
सब पर जिनभौन बावन विराजत हैं।
वर्ष तीन बार देव करै जै जैकार हैं॥७९॥

अर्थ— इस पद्य में आठवें नन्दीश्वर द्वीप की रचना का वर्णन है। इस द्वीप की चौड़ाई १६३८४०००००० योजन है। इसके भीतर ५२ पर्वत हैं। चारों दिशाओं में चार तो अंजनगिरि नाम के पर्वत हैं, जो चौरासी चौरासी हजार योजन ऊँचे लम्बे और चौड़े हैं तथा आदि मध्य और अन्त में इक से हैं। इन अंजनगिरियों के चारों ओर एक एक लाख योजन लम्बी, चौड़ी, गहरी चार चार बावड़ी हैं और उनके भीतर दश हजार लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के दधिमुख नाम के सोलह सफेद पर्वत हैं। इस तरह चारों अंजनगिरि के १६ दधिमुख हैं। जिन बावड़ियों में दधिमुख पर्वत हैं, उनके बाहरी दो दो कोनों में दो दो रतिकर ३२ हैं। इस तरह ४+१६+३२ मिलाकर ५२ पर्वत हुए। ये सब ढोल के समान गोल हैं और इन सबके ऊपर एक एक जिनमन्दिर है। ऐसे सब मिलाने से ५२ जिनमंदिर होते हैं। वहाँ वर्ष में तीन बार कातिक, फागुन और आसाढ़ के अन्तिम आठ दिनों में देव आते हैं और पूजा, स्तुति, नृत्य गानादि करके जयजयकार करते हैं।

मेरु का वर्णन

मेरु एक लाख जड़ ऊँचा निन्यानु हजार,
चूलिका चालीस बाल अन्तर विमान हैं।
नीचै भद्रसाल वन दिसा चारि जिनभौन,

पाँचसैपै नंदन चैताले चारि वान हैं॥
 साढ़े बासठ हजार सोमनस वन चारि,
 चैताले ऊँचे सहस छत्तिस बखान हैं।
 तहाँ वन पाण्डुक चैताले चारि सब सोलै,
 मनवचकायसेती बंदौ पाप हान हैं॥८०॥

अर्थ— सुमेरु पर्वत की ऊँचाई एक लाख योजन की है, जिसमें से जड़ से अर्थात् भूमि के ऊपरी भाग पर से ऊपर (भद्रशालवन से पाण्डुकवन तक) ९९ हजार योजन ऊँचा है। रहे एक हजार योजन, सो इतनी उसकी जड़ है। यह जड़ चित्रा पृथिवी से नीचे है। पाण्डुक वन से ऊपर चालीस योजन ऊँची चूलिका है, जिसके ऊपर भाग का सौधर्म स्वर्ग के ऋजु विमान से केवल एक बाल के बराबर अन्तर है। नीचे अर्थात् मेरु की चौगिर्द भूमि पर या चित्रा पृथ्वी के ऊपर भद्रशाल नाम का वन है, जिस पर मेरु की चारों दिशाओं में चार जिन मन्दिर हैं। इस भद्रशाल से पाँचसौ योजन की ऊँचाई पर मेरु की चारों दिशाओं में ४ नन्दवन वन हैं और उनमें ४ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। नन्दनवनों से ६२½ हजार योजन की ऊँचाई पर ४ सौमनस नाम के वन हैं और उनमें भी ४ चैत्यालय हैं। इससे आगे ३६ हजार योजन की ऊँचाई पर ४ पाण्डुक नाम के वन हैं और उनमें भी ४ जिनचैत्यालय हैं। इस तरह उक्त चार नाम के सोलह वनों में जो १६ चैत्यालय हैं, वे पाप के नाश करनेवाले हैं। उनकी मैं मनवचन कायपूर्वक वन्दना करता हूँ।

मेरुपर्वत का पूर्वपश्चिम विस्तार

मेरु गोल जड़तलैं दसहजार नव्वैकौ,
 भूममैं हजार दस, नंदनपै लहाहै।
 नौ हजार नौसै चौवन भाग कहे तहाँ,
 सौमनस ब्यालीससै बहत्तर रहा है॥
 पाण्डुक हजार एक बीच बारै चूलिका है,
 चौसै चौरानूं वन पाण्डुक सरदहा है।
 सौमनस नंदन हैं पाँचसैके, भद्रसाल—
 बाईस हजार पुव्व पच्छिम मैं कहा है॥८१॥

अर्थ— मेरु पर्वत का विस्तार गोल है। चित्रा पृथ्वी के नीचे मेरु की जड़ दश हजार नब्बे (१००९०) योजन की चौड़ी है और ऊपर जहाँ भद्रशालवन है वहाँ उसकी चौड़ाई दश हजार योजन की है। इस तरह जड़ के नीचे से चित्रा पृथ्वी तक मेरु की चौड़ाई क्रम से कम

होती होती ९० योजन कम हो गई है। भद्रशालवन से ५०० योजन की ऊँचाई पर नन्दन वन है, वहाँ मेरु^{६८} ९९५४ योजन और कुछ भाग (९/११) अधिक चौड़ा है अर्थात् वहाँ उसकी चौड़ाई एक सी है— घटी नहीं है; परन्तु आगे ५२५०० योजन में वह क्रम से घटी है और सौमनस वनपर ४२७२^{६९} योजन की मोटाई रह गई है। अर्थात् उतनी ऊँचाई में ५६८२ योजन से कुछ अधिक घट गई है। इसके ऊपर ३६ हजार योजन की ऊँचाई पर पाण्डुकवन हैं। इस ३६ हजार में से ११ हजार योजन की ऊँचाई तक मेरु पर्वत की चौड़ाई एक सी है अर्थात् वहाँ तक ३२७२ योजन की ही मोटाई चली गई है। आगे वह घटी है और घटते घटते पाण्डुक वन के पास १ हजार योजन की रह गई है। जिसके बीच में चूलिका की चौड़ाई १२ योजन है और शेष में दोनों ओर चारसौ चौरानवे चौरानवे योजन के पाण्डुक वन हैं। (४९४+४९४+१२=१०००)

सौमनस और नन्दनवन पाँच पाँच सौ योजन के चौड़े हैं और भद्रशाल वन पूर्व पश्चिम बाईस हजार योजन के हैं।

चौदह गुणस्थानों में मरकर जीव कहाँ कहाँ जाता है।

छप्पय

मिस्र खीन संजोग, तीनमें मरन न पावै।

सात आठ नव दसम, ग्यार मरि चौथे आवै॥

प्रथम चहुँगति जाय, दुतिय विन नरक तीन गति।

चौथे पूरव आवबंधतै चहुँगति प्रापति॥

पंचमतै ग्यारम सात गुन, मरै सुरगमै औतरै।

बंदौ इक चौदस थान तजि, अजर अमर सिवपद
वरै॥८२॥

अर्थ— तीसरे मिश्रगुणस्थान में, बारहवें क्षीणकषाय में और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थान में जीव मरण नहीं पाता है, यह नियम है। सातवें, आठवें, नववें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थान से यदि जीव मरण करता है, तो चौथे गुणस्थान में आता है अर्थात् मरण समय अव्रतरूप होकर कार्माण योग धारण करता है और देवगति को प्राप्त होता है। (देशविरत आ जाता है)।

⁶⁸ इसमें दोनों नन्दनवनों की पाँच पाँच सौ योजन की चौड़ाई भी शामिल है। मेरु की चौड़ाई यहाँ पर ८९५४ योजन है।

⁶⁹ इसमें भी दोनों सौमनसवनों की चौड़ाई हजार योजन शामिल है।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में मरा हुआ जीव चारों गतियों में जाता है; परन्तु देवगति में नवग्रैवेयिक तक ही जाता है। दूसरे गुणस्थान में मरकर नरक को छोड़कर शेष तीन गतियों में अर्थात् तिर्यच मनुष्य और देवगति में जाता है। चौथे^{७०} गुणस्थान में मरण करके जीव, पूर्व में अर्थात् मिथ्यात्व अवस्था में चारों आयुओं में से जिस आयु का बंध किया हो, उसी को प्राप्त होता है। पाँचवें से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक सात गुणस्थानों में यदि जीव मरता है, तो नियम से स्वर्ग जाता है।

जो चौदहवें गुणस्थान को छोड़कर एक समय में जरा मरण से रहित मोक्षपद को प्राप्त करते हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

नवमें गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों का क्षय सवैया इकतीसा।

प्रत्याखानी चारि औ अप्रत्याखानी चारि भेद,
संजुलन तीनि नव नोकषाय जानिए।
एकेंद्री विकलत्रै थावर आतप उदोत,
सूच्छम औ साधारन जीवनिकौ मानिए॥
निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला अरु थानगृद्धि,
नींद तीनी महाखोटी कबहूँ न ठानिए।
नर्क पसु गति आनुपूर्वी प्रकृति चारि,
नौमै गुणथानकमै ए छतीस मानिए॥८३॥

अर्थ— प्रत्याख्यानी चार अर्थात् प्रत्याख्यानी १ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ; अप्रत्याख्यानी चार अर्थात् ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ; संज्वलन तीन अर्थात् ९ संज्वलन क्रोध, १० माया, ११ मान; नौ नोकषाय अर्थात् १२ हास्य, १३ रति, १४ अरति, १५ शोक, १६ भय, १७ जुगुप्सा, १८ स्त्रीवेद, १९ पुरुषवेद, २० नपुंसकवेद, २१ एकेन्द्रिय; विकलत्रय अर्थात् ३० निद्रानिद्रा, ३१ प्रचलाप्रचला, ३२ स्त्यानगृद्धि, ३३ नरकगति, ३४ पशुगति, ३५ नरक गत्यानुपूर्वी और ३६ तिर्यच गत्यानुपूर्वी इन ३६

⁷⁰ इसमें इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति से पहले यदि नरकायु का बन्ध हो चुका है फिर सम्यक्त्व सहित ही मरण हो, तो पहले नरक तक ही जाता है— आगे के नरकों में नहीं जाता है। इसके सिवाय यदि पहले तिर्यचगति का बंध किया हो और पीछे सम्यक्त्व ग्रहण करके मरे, तो उत्तम भोगभूमिका तिर्यच होवे तथा मिथ्यात्व गुणस्थान में देवगति का बन्ध किया हो, पीछे सम्यक्त्व ग्रहण कर मरे, तो स्वर्ग में ही उपजे—पातालवासी, ज्योतिषी और व्यन्तरों में उत्पन्न न हों यदि सम्यक्त्व ग्रहण करने के पहले किसी कायु का बंधन किया हो, तो वह मरकर बड़ा देव हो— अन्य गति में न जाय और सोभी बड़ी ऋद्धि का धारक हो।

प्रकृतियों का नववें गुणस्था में क्षपकश्रेणीवाला मुनि सत्ता से नाश करता है।

जिनवाणी संख्या

सोलह सै चौतीस किरोर लाख तेरासिय,
अठत्तरसै अठासी अच्छर ए लेखिए।
इक्यावन कोर आठ लाख सहस चौरासी,
छसै साढ़े इकईस ए सिलोक पेखिए॥
तकौ पद इक जोर इकसौ बारै किरोर,
तेरासी लाख सहस अट्टावन देखिए।
पंच पद एते सब द्वादसांग जिनवानी,
बंदै मन लाय भेदग्यानकौ विसेखिए॥८४॥

अर्थात्— इस पद्य में द्वादशांगरूप जिनवाणी के अक्षरों, श्लोकों और पदों की गिनती बतलाई है। केवली भगवान् के द्वारा जो वाणी खिरी थी और गणधरदेव ने जिसे धारण करके गूँथी थी, उसी को जिनवाणी कहते हैं। उसमें १६३४८३०७८८८ अक्षर हैं। ५१०८८४६२१½ श्लोक हैं और उसके पद^{७१} एकत्र किये जावें, तो वे ११२८३५८००५ होते हैं। इन सब पदों की समूहरूप जिनवाणी की जो लगाकर वन्दना करने से भेदज्ञान की वृद्धि होती है।

चौदह गुणस्थानों में कर्मों का आस्रव

पहलै पाँचौं मिथ्यात दूजै अनंतानुबन्धी,
ग्यारै अविरत प्रत्याख्यानी पाँचै गहे।
वैक्रियक औ अप्रत्याख्यानी त्रसबध चौथें,
आहारक छट्टै षट हास्य आठलौं लहे॥
तीनि वेद तीनि संजुलन नवै लोभ दसै,
असत उभै वचन मन बारहै कहे।
सत अनुभय वच मन औदारिक तेरै,
मिस्र कारमान चारगुनथानै सरदहे॥८५॥

अर्थ— पहिले गुणस्थान तक एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान इन पाँच मिथ्यात्वों से आस्रव होता है— आगे इनका आस्रव नहीं होता। दूसरे गुणस्थान तक अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया

⁷¹ उक्त च— कोटी शतं द्वादशं चैव कोटयो लक्षण्यशीतिस्त्रयधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पञ्चदं नमामि॥

और लोभ से आस्रव होता है। पाँचवें गुणस्थान तक ग्यारह अविरतों से (पाँच इंद्रिय छट्टे मन की स्वच्छन्दता और पाँच थावरों की विराधना से) और प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ इन चार से; इस तरह पन्द्रहों से आस्रव होता है। चौथे गुणस्थानतक वैक्रियिक मिश्र, अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ और त्रसवध इन सातों से; छट्टे गुणस्थान में आहारक और आहारक मिश्र इन दो से; आठवें तक हास्यादि छह से अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा से; नववें तक स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये तीन वेद और संज्वलन क्रोध मान माया ये तीन संज्वलन कषाय इस तरह छह से; दशवें तक लोभ, से बारहवें तक असत् वचन, उभय वचन, असत् मन, उभय मन इन चार योगों से और तेरहवें में सत् वचन, अनुभय वचन, सत् मन, अनुभय मन ये चार मन वचन योग और औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्माण इन सातों से आस्रव होता है।

औदारिक मिश्र योग और कार्माणयोग चार गुणस्थानों में अर्थात् पहले, दूसरे, चौथे और तेरहवें गुणस्थानों में होते हैं।

चौदह गुणस्थानों में चारों आयुओं का बंध और उदय।

नरक आव पहलै बँधै उदय चौथे लौ,
 पसू आव दूजै बंध उदै पाँचमै कही।
 नर आव चौथे लग बंध उदै चौदहलौ,
 सुर आव सातै बंध उदै चारिमै लही॥
 नर पसुजीव नर्क पसु नर आव बंध,
 चौथेतै आगै चढ़िवेकौ न सकति गही।
 चारौ आव तीजे गुनथानकमै बंध नाहिं,
 आव नास भए सिद्ध तिनकौ बंदौ सही॥८६॥

अर्थ— नरक आयु का बंध पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में होता है और उदय चौथे गुणस्थान तक होता है। पशु आयु या तिर्यचायु का बंध दूसरे गुणस्थान तक अर्थात् पहिले और दूसरे गुणस्थान में होता है और उदय पाँचवें गुणस्थान तक होता है। मनुष्यायु का बंध चौथे गुणस्थान तक होता है और उदय चौदहवें तक रहता है। देवायु का बंध सातवें गुणस्थानक तक होता है और उदय चौथे तक रहता है।⁷² किसी मनुष्य या पशु जीव ने नरक पशु या मनुष्य की आयु बाँध ली हो, तो वह चौथे गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ सकता

⁷² जिस मुनि ने देवगति का बंध कर लिया हो, वह आगे ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ़ सकता है; परन्तु देवगति का बंध सातवें गुणस्थानतक ही होता है।

है— उसके परिणामों की इतनी बढ़ने की शक्ति नहीं हो सकती है। उपर्युक्त चारों आयुओं का बंध तीसरे मिश्र गुणस्थान में नहीं हो सकता है, ऐसा नियम है। जो महात्मा इन चारों आयुओं का नाश करके सिद्ध पद को प्राप्त हो गये हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

आठ स्थानों में निगोद नहीं, चार स्थानों में सासादन जीव
नहीं जाते आदि कथन।

भूमि नीर आगि पौन केवली औ आहारक,
नर्क सुर्ग आठमै निगोद नाहिं गाइए।
सूच्छम नरक तेज वायुमै न सासादन,
भौनत्रिक पसुमै न तीर्थकर पाइए॥
सब ही सूच्छम अंग कहे हैं कपोत रंग,
कारमान देहकौ सुपेद रूप भाइए।
विपुल मनपजै औ पर्म औधि सर्व औधि,
ठीक लहै मोख तातै इन्है सीस नाइए॥८७॥

अर्थ— पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, केवली भगवान् का परमौदारिक शरीर, छट्टे गुणस्थानवर्ती मुनि के प्रगट हुआ आहारक शरीर, नारकी जीवों के शरीर और देवों के शरीर इन आठ स्थानों में, निगोद जीव नहीं होते हैं। सूक्ष्म जीवों में अर्थात् पृथ्वीकाय, जलकाय, नित्यनिगोद और इतर निगोद के जीवों में, सातों नरकों के जीवों में, अग्निकाय के सूक्ष्म बादर जीवों में और पवनकाय के सूक्ष्म बादर जीवों में इस तरह इन चार स्थानों के जीवों में सासादन गुणस्थाननहीं होता है। अर्थात् जीव सासादन गुणस्थान के परिणामों को वहाँ तक नहीं ले जा सकता है। भवनत्रिक अर्थात् भवनवासी देव, व्यन्तर देव और ज्योतिषी देव, तथा भोगभूमियाँ और कर्मभूमिया पशु इनमें तीर्थकर की सत्ता सहित जीव नहीं जाता है। अर्थात् तीर्थकर नामकर्म का बंध जिसको हुआ हो, वह जीव भवनवासी देव आदि में जन्म नहीं लेता है। सूक्ष्म जीव जो कि छह प्रकार के हैं, उनका रंग कापोत अर्थात् कबूतर सरीखा होता है। विग्रहगति में जो कार्माण शरीर होता है, उसका रंग सफेद समझना चाहिए। विपुलमनः पर्यय ज्ञान, परमावधि ज्ञान और सर्वावधि ज्ञान के धारक मुनि निश्चयपूर्वक मोक्ष को पाते हैं— वे तद्भवमोक्षगामी होते हैं, इसलिए मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

सात नरकों और सोलह स्वर्गों का आवागमन

साततै निकसि पसु, छट्टे नर व्रत नाहिं,

पाँचें महाव्रत चौथेसेती मोख सार है।
तीजे दूजे पहलेतैं आय जिनराय होय,
भौनत्रिक सुरग दोय एकेंद्री धार है॥
बरहवैं स्वर्गसेती पंचइंद्री पसु होय,
ऊपरकाँ आयौ एक नरकाँ औतार है।
दक्खेंद्र सुधर्मरानी लोकपाल लौकांतिक,
सर्वार्थसिद्धि मोख लहै, नमोकार है॥८८॥

अर्थ— सातवें नरक से निकलकर जीव क्रूर पंचेन्द्रिय पशु होता है— मनुष्य नहीं होता है। छठे नरक से निकलकर जीव मनुष्य तो हो जाता है; परन्तु महाव्रत धारण नहीं कर सकता है पाँचवें से निकलकर मनुष्य होता है और महाव्रत भी धारण कर सकता है; परन्तु समस्त कर्मों का क्षयकर मुक्त नहीं हो सकता है। चौथे नरक से निकलकर मनुष्य होकर, महाव्रत धारण करके मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है; पर तीर्थकर नहीं हो सकता। तीसरे, दूसरे और पहले नरक से निकलकर अचिन्त्य विभूति का धारक तीर्थकर भी हो सकता है।⁷³ भवनत्रिक देव (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी) और सौधर्म, ईशान स्वर्गों के देव मरकर एकेंद्री पर्याय में भी जन्म ले सकते हैं; परन्तु एकेंद्री में अग्निकाय, वायुकाय सूक्ष्म और साधारण जीव नहीं हो सकते हैं— वादर पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय हो सकते हैं। तीसरे सतत्कुमार स्वर्ग से बारहवें सहस्रार स्वर्गतक के देव पंचेंद्री पशु हो सकते हैं— एकेंद्रियादि नहीं हो सकते और बारहवें स्वर्ग से ऊपर के देव एक मनुष्यशरीर में ही अवतार लेते हैं— अन्य गतियों में ही जाते। स्वर्गों के आठ युगल हैं और उनमें बारह इंद्र हैं। इन बारह इंद्रों में छह उत्तर के हैं और छह दक्षिण के हैं। दक्षिण के छह इंद्र, सौधर्म स्वर्ग की इंद्राणी, सौधर्म स्वर्ग के चारों लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग के सब अहमिन्द्र ये केवल एक ही भव धारण करके मुक्त हो जाते हैं, इसलिए उन सबको मेरा नमस्कार है।

कषायों के दृष्टान्त और उनके फल।

पाहन की रेख, थम्भ पाथरकौ, बाँसबिड़ा,
कृमिरंग सम, चारौं नर्कमाहिं ले धरै।
हललीक हाड़थम्भ मेषसींग गाड़ीमल,

⁷³ नरक का निकला हुआ जीव सीधा स्वर्ग में जन्म नहीं ले सकता और स्वर्ग से च्युत हुआ सीधा नरक में नहीं जा सकता है, ऐसा नियम है। स्त्री मरण करके छठे नरक तक जा सकती है, सातवें नरक में नहीं जा सकती।

क्रोध मान माया लोभ तिरजंचमै परै ॥
रथलीक काठथम्भ गोमूत देहमैलसे,
कषाय भरे जीव मानुषमै अवतरै।
जलरेखा वेतदण्ड खुरपा हलदरंग,
घानत ए चारि भाव सुर्गरिद्धिकौ करै ॥८९॥

अर्थ— क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों के परिणामों के तीव्रता मन्दता के अनुसार १६ भेद होते हैं। उन सबके क्रम से दृष्टान्त तथा फल कहते हैं— अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थर की लकीर के समान अनन्त काल तक ठहरता है— बहुत ही कठिनाई से नष्ट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पाषाण के खम्भ के समान अनन्तकाल तक सीधा ज्यों का त्यों बना रहता है— सहज ही नहीं नबता है। अनन्तानुबन्धी मान पाषाण के खम्भ के समान अनन्त काल तक ठहरता है— बहुत ही कठिनाई से नष्ट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पाषाण के खम्भ के समान अनन्त काल तक सीधा ज्यों का त्यों बना रहता है— सहज ही नहीं नबता है। अनन्तानुबन्धी माया बांस के भिड़े के समान बहुत ही टेढ़ी मेढ़ी रहती है और अनन्तानुबन्धी लोभ कृमिरंग अर्थात् लाख के रंग के समान बहुत ही पक्का होता है— अनन्तकाल तक बना रहता है— शीघ्र नहीं धुलता। ये चारों कषाय सम्यक्त्व को नहीं होने देते हैं और जीव को नरक गति में ले जाते हैं। अप्रत्याख्यानी क्रोध खेत जोतने से जैसी हलकी लकीर बन जाती है, उसके समान छह महीना तक रहता है। अप्रत्याख्यानी मान हड्डी के स्तम्भ के समान है— नव सकता है; परन्तु मुश्किल से। अप्रत्याख्यानी माया, जिस तरह मेंढे के सींग साधारण टेढ़े और लड़ने में घिसघिसकर कम होते हैं उसी तरह टेढ़ी और धीरे धीरे कम होती है। अप्रत्याख्यानी लोभ गाड़ी के ओंगन के रंग समान है— कठिनाई से छूट सकता है ये चार कषाय सम्यक्त्व घात तो नहीं करते हैं और जीव को तिर्यच गति में ले जाते हैं। प्रत्याख्यानी क्रोध गाड़ी के चके की लकीर समान होता है— अधिक समय तक नहीं ठहरता है। अप्रत्याख्यानी मान लकड़ी के स्तम्भ के समान होता है— प्रयत्न करने से नव सकता है। प्रत्याख्यानी माया गोमूत्र के समान कम टिढ़ाई लिए होती है। प्रत्याख्यानी लोभ शरीर के ऊपर जो मैल लग जाता है, उसके समान होता है— शीघ्र छूट जाता है। ये चारों कषाय महाव्रत धारण नहीं करने देते हैं और इन कषायों से भरे हुए जीव प्रायः मनुष्य गति में जन्म पाते हैं। ये प्रत्याख्यानी कषाय एक बार के उत्पन्न हुए अधिक से अधिक १५ दिन तक रहते हैं। संज्वलन क्रोध पानी की लकीर के समान है— तत्काल ही नष्ट हो जाता है। संज्वलन मान बेत की छड़ी के समान है, जो थोड़े से प्रयत्न से ही लच जाती है। संज्वलन माया खुरपा के समान है— उसमें थोड़ी सी ही टिढ़ाई रहती है और संज्वलन लोभ हलदी के

रंग समान है— बहुत सुगमता से मिट जाता है। ग्रन्थकर्ता दानतराय कहते हैं कि ये चार कषायभाव स्वर्गऋद्धि के करनेवाले हैं; परन्तु इनके होते हुए यथाख्यात चारित्र नहीं हो सकता है।

चौदह गुणस्थानों में चौतीस भावों की व्युच्छित्ति।

पहलै मिथ्या अभव् दूसरै विभंग तीनि,
लेस्या तीनि अव्रत नरक देव चारमै।
पसु पाँचै लेस्या दोय सातै लोभ दसै लग,
क्रोध मान माया तीनि वेद नौ विचारमै॥
सेत तेरै नर भव् जीवत असिद्ध चौदै,
पंचलब्ध अग्यान चछ अचछ बारमै।
चौतीसौ भाव कहे चौदह गुणस्थानकमै,
वे (?) उनीस बारहमै मैं हौं अविकारमै॥१०॥

अर्थ— पहले मिथ्यात्व गुणस्थानतक मिथ्यात्व भाव और अभव्य भाव ये दो भाव, दूसरे गुणस्थान तक कुमति कुश्रुत और कुअवधि ये तीन विभंग भाव (क्षायोपशामिक), चौथे गुणस्थान तक कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्या तथा अव्रत (असंयम) नरकगति और देवगति इसप्रकार छह भाव, पाँचवें गुणस्थानतक पशु अर्थात् तिर्यचगतिय यह एक, सातवें तक पीतलेश्या और पद्मलेश्या ये दो भाव, नववें तक क्रोध मान माया और पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ये तीन वेद इसतरह छह भाव, दशवें तक सूक्ष्म लोभ यह एक बारहवें तक पाँच लब्धियाँ (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य), अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये आठ भाव, तेरहवें तक शुक्ल लेश्या यह एक और चौदहवें तक मनुष्यगति, भव्यत्व, जीवत्व और असिद्धत्व ये चार भाव होते हैं। इस तरह ये ३४ भाव क्रम से चौदह गुणस्थानों में बतलाये अर्थात् यह बतलाया कि किन किन गुणस्थानों में किन किन भावों की व्युच्छित्ति होती है? जिस गुणस्थान में जिस भाव की व्युच्छित्ति कही हो, उस गुणस्थान से ऊपर वह भाव नहीं रह सकता। इसलिए यहाँ पर जिस गुणस्थान तक जो भाव कहो हो वह भाव उससे पूर्व के गुणस्थानों में तो यथासम्भव मिल सकता है; परन्तु उसके ऊपर के गुणस्थानों में वह भाव सर्वथा नहीं रह सकता। इनके सिवा १९ भाव बारह गुणस्थानों में बतलाये हैं। (देखो आगे का सवैया) मैं इन सब भावों से जुदा विकार रहित हूँ। क्योंकि, कर्मरूप पर वस्तु के योग से ये सब विकार उपजते हैं। शुद्ध आत्मा में इन भावों की कल्पना नहीं है।

बारह गुणस्थानों में उनीस भाव।

उपसम चौथें ग्यारें वेदक है चौथें सातें,
 छायाक है चौथें चौदैं, देशव्रत पाँचमें।
 ग्यान तीनि तीजैं बारैं, मनपजैं छट्टैं बारैं,
 चारित सराग छट्टैं दसैं कहौ सांचमें॥
 औधि तीजैं बारैं, उपसम चारित ग्यारें ही,
 छायाक चारित बारैं चौदैं कर्म वाचमें।
 पंचलब्धि छायाक दरस ग्यान तेरैं चौदैं,
 नमौ भाव उनईस छूटौ नर्क आंचमें॥१९॥

अर्थ— उपशम सम्यक्तव चौथे गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। वेदक सम्यक्त्व चौथे से चौदहवें तक पाया जाता है। देशव्रत भाव पाचवें ही गुणस्थान में होता है। मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान तीसरे गुणस्थान से लेकर बारहवें तक, मनःपर्यय ज्ञान छट्टे से बारहवें तक और सराग चारित्र छट्टे से दशवें तक कहा है। अवधि दर्शन तीसरे से बारहवें तक होता है। उपशम चारित्र एक ग्यारहवें गुणस्थान में ही होता है। क्षायिक चारित्र बारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। पाँच लब्धि, क्षायिक दर्शन (केवल दर्शन) और केवल ज्ञान ये ७ भाव तेरहवें चौदहवें गुणस्थान में होते हैं। इस तरह (पहिले दूसरे को छोड़कर) बारह गुणस्थानों में १९ भाव होते हैं। इन भावों के मैं नमस्कार करता हूँ, जिससे मैं नरकों की आँच से छूट जाऊँ—बच जाऊँ। यदि पहले आयुबन्ध न हुआ हो, तो इन भावों के होने पर फिर नरकादि के दुःख नहीं सहना पड़ते हैं।

ये १९ भाव घाति कर्मों का क्षयोपशमादि होने से ही होते हैं। इनके कहने में व्युच्छित्ति होने का या दिखाने का वक्ता का अभिप्राय नहीं है।

पहले जो ३४ भाव कहे हैं उनमें कुछ की उत्पत्ति तो कर्मोदय से, कुछ की क्षयोपशमादि से तथा कुछ की स्वाभाविक होती है अर्थात् उनमें कर्म की क्षयोपशमादि किसी अवस्था विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती और उनका वर्णन ऊपर ऊपर के गुणस्थानों में उनकी व्युच्छित्ति दिखाने के लिए किया गया है। दोनों जगह इन भावों के जुदा जुदा कहने का यही प्रयोजन है।

चौदह गुणस्थानों में त्रेपन भाव।

कवित्त (३१ मात्रा)।

चौतिस बत्तिस तेतिस छत्तिस,

इकतिस इकतिस इकतिस मान।
 अट्टाइस अट्टाइस बाइस,
 बाइस बीस बरीमै थान॥
 चौथै तेरै अंतिम थानक,
 पंच भाव सिद्धाले जान।
 सम्यक ग्यान दरस बल जीवत,
 निहचैसौ तू आप पिछान॥१२॥

अर्थ— जीवों के जो ५३ भाव हैं, वे चौदह गुणस्थानों में क्रम से इसप्रकार होते हैं— पहले गुणस्थान में ३४, दूसरे में ३२, तीसरे में ३३, चौथे में ३६, पाँचवें में ३१, छठे में ३१, सातवें में ३१, आठवें में २८, नववें में २८, दशवें में २२, ग्यारहवें में २२, बारहवें में २०, तेरहवें में १४ और चौदहवें में १३। सिद्धालय में पाँच भाव होते हैं— सम्यक्तव, ज्ञान, दर्शन, बल और जीवत्व। हे आत्मन्, निश्चय से तू आपको सिद्ध के समान समझ।

अब यहाँ यह बतलाया जाता है कि त्रेपन भाव कौन कौन हैं— भावों के मूलभेद ५ हैं— औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक। औपशमिक के दो भेद हैं— उपशम सम्यक्तव और उपशम चारित्र। क्षायिक के नव भेद हैं— क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। क्षायोपशमिक या मिश्र के १८ भेद हैं— मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य (क्षायोपशमिक लब्धि), क्षायोपशमिक सम्यक्तव, क्षायोपशमिकचारित्र और संयमासंयम। औदयिक के २१ भेद हैं— ४ गति, ४ कषाय, ३ लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व और ६ लेश्या। पारिणामिक के तीन भेद हैं— जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।

चारों गतियों में आस्रवद्वार।
 सवैया इकतीसा।

वैक्रियक दोय बिना नर पचपन द्वार,
 आहारक दोय बिना त्रेपन तिर्जच है।
 औदारिक दोय दोय आहारक षण्डवेद,
 पाँच बिना देवनिकै बावन कौ संच है॥
 आहारक दोय दोय औदारिक नारि नर,
 छहौं बिना इक्यावन नर्क मैं प्रपंच है।

चारों गतिमाहिं ऐसै आस्रव सरूप जान,
नमौ सिद्ध भगवान् जहाँ नाहिं रंच है॥१३॥

अर्थ— मनुष्यगति में वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र इन दो को छोड़कर शेष ५५ आस्रवद्वार सामान्यता से हैं। तिर्यचगति में आहारक और आहारक मिश्र इन दो को (५५ में से) छोड़कर ५३ आस्रवद्वार हैं। देवगति में औदारिक, औदारिक मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र और नपुंसकवेद इन पाँच को छोड़कर (५७ में से) ५२ आस्रवद्वार हैं। नरक गति में आहारक, आहारकमिश्र, औदारिक, औदारिक मिश्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छह को छोड़कर ५१ आस्रवद्वार हैं। इस तरह चारों गतियों में आस्रवद्वारों का स्वरूप जानना चाहिए। उन सिद्धभगवान् को नमस्कार है, जिनके कर्मों का आस्रव रंच मात्र भी नहीं होता है।

चारों गतियों में त्रेपन भाव

सासतौ सुभाव पंचभाव सिद्ध वंदत हौं,
तीनों गति बिना नरकै पचास दीस हैं।
छायक के आठ समकित बिना मनपजै,
चरित दो ग्यारै बिन पसु उन्तालीस हैं॥
सुभलेस्या तीनि नरनारिवेद देसव्रत,
एते छहौं भाव बिना नारक तेतीस हैं।
हीन तीन लेस्या षंडवेद चारि भाव नाहिं,
सुभलेस्या नरनारि सुरकै चौतीस हैं॥१४॥

अर्थ— क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकसम्यक्तव, अनन्तबल और जीवत्व ये पाँच भाव सिद्ध भगवान् के शाश्वत स्वभाव हैं। अर्थात् उनके ये पाँच भाव सदा अविनाशी हैं। ऐसे सिद्धों की मैं वन्दना करता हूँ। नरकगति, तिर्यचगति और देवगति इन तीन औदयिक भावों के बिना बाकी ५० भाव मनुष्यगति में सामान्यता से हैं। क्षायिकभाव ९ हैं, उनमें से सम्यक्तव को छोड़कर ८ भाव, मनःपर्ययज्ञान और दो चारित्र अर्थात् उपशम चारित्र और क्षयोपशमिक चारित्र इस तरह ११ भावों को छोड़कर (त्रेपन में से) नरक, देव और मनुष्य इन तीन शुभलेश्या और पुरुषवेद, स्त्रीवेद, देशव्रत इस तरह छह

भावों को छोड़कर (३९ में से^{७४}) बाकी ३३ भाव नरक गति में होते हैं। कृष्ण, नील, कापोत ये तीन हीन लेश्या अर्थात् अशुभलेश्या और नपुंसकवेद ये चार भाव (३३ में से) देवगति में नहीं होते हैं और पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या (शुभलेश्या), पुरुषवेद, स्त्रीवेद ये पाँच विशेष होते हैं। इस तरह ३३-४+५=३४ भाव देवगति में सामान्यता से हैं।

छहों लेश्यावालों के मिथ्यात्वगुणस्थान में कौन कौन कर्मों का बन्ध होता है?

विकलत्रै सूच्छम साधारन अपर्जापत,
नकरगति आनुपूर्वी नरक आव हैं।
मिथ्यामाहिं लेस्या तीनि बांधै इकसौ सतरै,
नव बिना पीतकै अठोत्तरसौ भाव हैं॥
एकेंद्री थावर औ आतप इन तीनि बिना,
पदम एकसौ पाँच बंधकौ उपाव हैं।
पसूगति आव आनुपूर्वी उदोत चारि
बिना, सुकल सौ एक बांधै पुन चाव हैं॥१५॥

अर्थ— मिथ्यात्व गुणस्थान में कृष्ण नील और कापोत इन तीन लेश्यावाले जीव ११७ प्रकृतियों का बन्ध करते हैं (देखो ६० वें पद्य की टीका)। इनमें से विकलत्रय (दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय), सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरक आयु इन ९ प्रकृतियों को छोड़कर बाकी १०८ प्रकृतियों का बन्ध पीत लेश्यावाले करते हैं। एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप इन तीन को छोड़कर (१०८ में से) १०५ प्रकृतियों का बंध पद्मलेश्यावाले जीव करते हैं और तिर्यच गति, तिर्यच आयु, तिर्यच आनुपूर्वी और उद्योत इन चार को छोड़कर (१०५ में से) १०१ प्रकृतियों का बंध शुक्ललेश्यावाले जीव करते हैं।

साधारणतः मिथ्यात्वगुणस्थान में ११७ प्रकृतियों का बन्ध होता है; परन्तु लेश्या के सम्बन्ध से यह विशेषता होती है। अर्थात् पीतपद्मशुक्ललेश्यावाले जीवों के ११७ से कम प्रकृतियों का बन्ध होता है।

चौरासी लाख योनियाँ

⁷⁴ तिर्यच गति में ३९ भाव दिखाते समय जिस तरह नरकगति को कम किया है उसी तरह यहाँ पर नरकगति के भाव दिखलाते समय तिर्यच गति घटानी चाहिए। बाकी १३ भाव उपर्युक्त ही कम होते हैं इस तरह उक्त ३९ में से ६ भाव घटाकर ३३ भाव रक्खे गये हैं।

सात लाख पृथ्वीकाय सात लाख अपकाय,
 सात लाख तेजकाय सात लाख वात है।
 सात लाख नित्य औ इतर सात साधारन,
 दस लाख परतेक इकइंद्री गात है॥
 वे ते चव इंद्री दो दो मानुष चौदह लाख,
 नर्क स्वर्ग पसु चारि चारि लाख जात है।
 चवरासी लाख जात मो ऊपर छिमा करौ,
 हमहूनै छिमा करी वैर किए घात है॥१६॥

अर्थ— पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, नित्यनिगोद और इतर निगोद (साधारण) जीवों की सात सात लाख प्रकार की जातियाँ या योनियाँ हैं तथा प्रत्येक वनस्पति जीवों की दश लाख जातियाँ हैं। इस तरह एकेन्द्री जीवों की ५२ लाख जातियाँ हैं। दोइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय जीवों की दो दो लाख, मनुष्यों की चौदह लाख, और नारकियों, देवों तथा पशुओं की चार चार लाख जातियाँ हैं। इस तरह सब ५२+६+१४+१२= ८४ लाख जाति के जीव मुझपर क्षमा करें। मैं भी उन पर क्षमा भाव रखता हूँ। क्योंकि क्षमा का विरुद्ध भाव जो वैर है, उसके करने से घात होता है— भव भव में दुःख सहना पड़ते हैं।

वे त्रेसठ कर्मप्रकृतियाँ कि जिनका नाश होने पर केवलज्ञान होता है॥

नर्क पसू गति आनुपूर्वी प्रकृति चारि,
 पंचेंद्रिय बिना चारि आतप उदोत है।
 साधारन सूच्छम औ थावर प्रकृति तेरै,
 नर आव विना तीनि मिलि सोलै होत है॥
 सैंतालीस घातिया की त्रेसठि प्रकृति सब,
 नासि भए तीर्थकर ग्यानमई जोत है।
 देवन के देव अरहंत हैं परम पूजि,
 तिनही कौ बिंब पूजि होहिं ऊँच गोत है॥१७॥

अर्थ— १ नरक गति, २ तिर्यच गति, ३ नरकगत्यानुपूर्वी, ४ तिर्यचगत्यानुपूर्वी, पंचेंद्रिय को छोड़कर शेष चार इंद्रियाँ अर्थात् ५ एकेन्द्री, ६ दोइंद्रिय, ७ तेइंद्रिय, ८ चौइंद्रिय, ९ आतप, १० उद्योत, ११ साधारण, १२ सूक्ष्म और १३ स्थावर इन तेरह में नर आयु को छोड़कर शेष तीन आयु मिलाने से अर्थात् नरक आयु, तिर्यचायु और देव आयु जोड़ने से १६ प्रकृतियाँ अघातिया कर्मों की होती हैं। इनमें

घातिया कर्मों की ४७ प्रकृतियाँ (५ ज्ञानावरणी, ९ दर्शनावरणी, २८ मोहनी, ५ अन्तराय) मिलाने से ६३ प्रकृतियाँ होती हैं। इन सबका नाश करके तीर्थकर केवलज्ञानमय ज्योति के धारण करनेवाले हुए हैं। ये ही तीर्थकर भगवान् देवों के देव अरहंत और परम पूज्य हैं। इनकी प्रतिमा का पूजन करने से उच्च गोत्र का बन्ध होता है। अर्थात् प्रतिष्ठित कुलों में जन्म मिलता है।

**चरों गतियों में कौन कौन और कितनी कितनी
प्रकृतियों का बन्ध होता है?**

औदारिक दोय आहारक दोय नर्क देव,
गति आव आनुपूर्वी दसौ बखानी हैं।
विकलत्रै सूच्छम साधारण अपर्जापत,
सोलै बिन सत चार देवकै प्रवानी हैं॥
एकेंद्री थावर आतप तीन प्रकृति विना,
नर्क एक सत एक बंधजोग जानी हैं।
तीर्थकर आहारक बिना पसू सौ सतरै,
नरकै बीसासौ सब नासै सिवथानी हैं॥१८॥

अर्थ— आठ कर्मों की १२० प्रकृतियाँ बन्धयोग्य हैं। इनमें से देवगति में १ औदारिक, २ औदारिक अंगोपांग, ३ आहारक, ४ आहारक अंगोपांग, ५ नरक गति, ६ देवगति, ७ नरकगत्यानुपूर्वी, ८ देवगत्यानुपूर्वी, ९ नरकआयु, १० देवायु, ये दश और १ दो इंद्री, २ तेइंद्री, ३ चौइंद्रिय, ४ सूक्ष्म, ५ साधारण, ६ अपर्याप्त ये छह इस तरह १६ प्रकृतियों को छोड़कर शेष १०४ प्रकृतियों का बन्ध होता है। नरकगति में एकेंद्री, स्थावर और आताप इन तीन को छोड़कर (१०४ में से) बाकी १०१ प्रकृतियों का बन्ध होता है। तिर्यच गति में तीर्थकर और दोनों आहारक (आहारक, आहारक अंगोपांग) इन तीनों को छोड़कर (१२० में से) ११७ प्रकृतियों का बन्ध होता है और मनुष्य गति में सामान्यतः एकसौ बीसों प्रकृतियों का बन्ध होता है। इन सब प्रकृतियों का नाश करने से जीव शिवस्थानी अर्थात् सिद्ध भगवान् हो जाते हैं।

समस्त जीवों की उत्कृष्ट आयु

मृदु भूमि बारै खर भू बाईस जल सात,
वात तीनि तरू काय की दस हजार है।

पंखी की बहत्तरि सहस्र बियालीस साँप,
 आगि दिन तीनि दोइंद्री वरस बार है॥
 तेइंद्री दिन उनंचास चवइंद्री छेमास,
 सरीसृप पूवरांग नव आव धार है।
 मच्छ कोर पूरब मनुष्य पसू तीनि पल्य,
 सागर तेतीस देव नारकी की सार है॥१९॥

अर्थ— मृदुभूमिकायिक की अर्थात् गेरू, हरताल आदि कोमल पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु १२ हजार वर्ष की है और खरभूकाय की अर्थात् रत्न पत्थर आदि, कठोर पृथ्वीकायिक जीवों की २२ हजार वर्ष की है। जलकायिक जीवों की ७ हजार, वायु कायिक की ३ हजार, तरुकायिक की १० हजार, पक्षियों की ७२ हजार, सर्पों की ४२ हजार वर्ष, अग्निकायिक की ३ दिन, शंख आदि दोइंद्रिय जीवों की १२ वर्ष, बिच्छू आदि तेइंद्रिय जीवों की ४९ दिन, भौरा आदि चौइंद्रिय जीवों की ९ पूर्वांग, मच्छ की (कर्मभूमियाँ मनुष्य और पशुओं की भी) एक कोटिपूर्व, भोगभूमियाँ मनुष्यों तथा पशुओं की तीन पल्य और देवों तथा नारकियों की उत्कृष्ट आयु ३३ सागर की है।

नक्षत्रों के तारे और अकृत्रिम चैत्यालय

षट पाँच तीनि एक षट तीनि षट चारि,
 दो दो पाँच एक एक चौ षट तीनीं गहे।
 नव चौ चौ तीनि पाँच एक सौ ग्यारह,
 दोय दो बतीस पाँच तीनि तारे ए लहे॥
 कृत्तिकादि ठाइसके सब दोसै इकताली,
 एक एक के ग्यारहसौ ग्यारै सरदहे।
 दोय लाख सतसठ हजार नवसै वानूँ,
 सबमै चिताले प्रतिबिम्ब वानीमै कहे।१००॥

अर्थ— कृत्तिकादि नक्षत्रों की संख्या २८ है और उनके सम्बन्धी तारों की संख्या २४१ है। फिर इन प्रत्येक तारों के सम्बन्धी ग्यारह सौ ग्यारह ग्यारह तारे हैं। इस तरह सब मिलाकर २६७९९२ तारे हैं। इन सब तारों में जिनेन्द्रदेव के अकृत्रिम चैत्यालय हैं, ऐसा जिनवाणी में कहा है। कौन कौन नक्षत्रों के कितने कितने और कौन कौन तारे हैं, यह नीचे लिखे कोष्टक में बतलाया है—

अट्टाईस नक्षत्रों के तारे

१. कृत्तिका	६	१५.अनुराधा	६
२. रोहिणी	५	१६.ज्येष्ठा	३
३. मृग	३	१७.मूल	९
४. आर्द्रा	१	१८.पूर्वाषाढ	४
५. पुनर्वसु	६	१९.उत्तराषाढ	४
६. पुष्य	३	२०.अभिजित	३
७. अश्लेषा	६	२१.श्रवण	३
८. मघा	४	२२.धनिष्ठा	५
९. पूर्वा	२	२३.शततारिका	१११
१०.उत्तरा	२	२४.पूर्वा भाद्रपदा	२
११.हस्ति	५	२५.उत्तराभाद्रपदा	२
१२.चित्रा	१	२६.रेवती	३२
१३.स्वाती	१	२७.अश्विनी	५
१४.विशाखा	४	२८.भरणी	३
अट्टाईस नक्षत्रों के तारे			२४१

प्रत्येक तारे के तारे १११२

सम्पूर्ण तारे २४१ X १११२ = २६७९९२

जिनवाणी के सात भंग

दर्व खेत काल भाव अपने चतुष्टै अस्त,
 परके चतुष्टैसैं न नासत दरब हैं।
 आपसैं है परसैं न एक समै अस्तनास,
 ज्यौंके त्यों न कहे जाहिं अस्त अवतव हैं॥
 अस्त कहैं नासका अभाव अस्त अवतव,
 नास्त कहैं अस्त नाहिं नास अवतव हैं।
 एकठे कहे न जाहिं अस्तनासअवतव,
 स्यादवादसेती सात भंग सधैं सब हैं।१०१॥

अर्थ— प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप चतुष्टय से अस्तिरूप है, इसलिए उसे स्यात् (कथंचित्) अस्तिरूप कहते हैं और वही पदार्थ पर के द्रव्यक्षेत्रकाल भावरूप चतुष्टय से 'नहीं' है, इसलिए उसे स्यात् नास्तिरूप कहते हैं। आपके चतुष्टय से वह है और पर के चतुष्टय से नहीं है, इसप्रकार ये दोनों गुण एक ही वस्तु में एक ही समय हैं, इसलिए उसे स्यात् अस्तिनास्तिरूप कहते हैं। पदार्थ का स्वरूप एकान्त से ज्यों का त्यों अर्थात् एक साथ परस्पर विरुद्ध

अस्तित्व नास्तित्वादि धर्मों का समुदाय कहा नहीं जा सकता है। जिस समय अस्ति कहते हैं, उस समय नास्ति का कहना सम्भव नहीं होता है और जिस समय नास्ति कहते हैं उस समय अस्तित्व का कहना नहीं बन सकता है इसलिए उसे स्यात् अवक्तव्य कहते हैं। पदार्थ स्वचतुष्टय से तो अस्तिरूप है और एक साथ अस्तिनास्तिरूप होने से (चौथे भंग के समान) कहा नहीं जा सकता है, इसलिए स्यात् अस्तिअवक्तव्य है। इसी तरह परचतुष्टय से नास्तिरूप है तो भी एक साथ अस्तिनास्तिरूप पूर्ण स्वरूप कहने में नहीं आ सकता है, इसलिए स्यात् नास्ति अवक्तव्य है और पदार्थ अपने तथा पर के चतुष्टय से अस्तिनास्तिरूप है; परन्तु एक साथ अस्तिनास्तिरूप कहा नहीं जा सकता है, इसलिए स्यात् अस्तिनास्तिअवक्तव्य है। इस तरह ये सातों भंग स्यादवाद से सधते हैं।

पदार्थ अनेकान्तरूप है। स्यात् वा कथंचित् शब्द का आश्रय लिये बिना किसी भी पदार्थ का यथार्थ स्वरूप नहीं कहा जा सकता है। अमुक पदार्थ 'ऐसा ही है' इसप्रकार कहने से पदार्थ स्थित अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध होता है इसलिए ऐसा कहना ठीक नहीं; किन्तु 'ऐसा भी है' इसप्रकार कहने से पदार्थ स्थित अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध होता है। इसलिए ऐसा कहना ठीक नहीं; किन्तु 'ऐसा भी है' इस प्रकार कहा जा सकता है क्योंकि इससे अन्य धर्मों का सर्वथा अभावसिद्ध नहीं होता फिर भी प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप अपेक्षा से कहा जाता है। जहाँ अपेक्षा नहीं है, वहीं मिथ्या है (असत्य है)।

सर्वज्ञ के ज्ञान की महिमा।

जीव हैं अनंत एक जीव के अनंत गुण,
 एक गुण के असंख परदेस मानिए।
 एक परदेस में अनंत कर्मवर्गना है,
 एक वर्गना अनंत परमाणु ठानिए॥
 अनुमै अनंत गुण एक गुणमै अनंत,
 परजाय एककै अनंत भेद जानिए।
 तिनितै हुए अनंत तातै होंहिगे अनंत,
 सब जानै समैमाहिं देव सो बखानिए।१०२॥

अर्थ— संसार में अपनी अपनी जुदी सत्ता को लिये हुए अनन्त जीव हैं और प्रत्येक जीव के अनन्त गुण हैं। यद्यपि जीव के गुणों की संख्या जीवराशि से अनन्त गुणी है, तो भी आलाप से वह अनन्त ही कही जाती है। इन गुणों में से एक एक गुण के असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। क्योंकि जीव असंख्यात प्रदेशी है और निश्चयनय से जीव और गुण में भेद नहीं है— वे अभिन्न हैं। जीव के उक्त एक

एक प्रदेशों अनन्त कर्मवर्गणाएँ हैं— प्रदेशों के साथ एकावगाहरूप हो रही हैं और एक एक कर्मवर्गणा में अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु हैं। क्योंकि अनन्त परमाणु मिले बिना कर्मरूप वर्गणाएँ नहीं बन सकती हैं। इन सब परमाणुओं में प्रत्येक प्रत्येक परमाणु के अनन्त अनन्त गुण हैं और एक एक गुण, अनन्त अनन्त पर्यायरूप परिणमन करता है तथा एक एक पर्याय के अनन्त अनन्त भेद हैं। इन सब पर्यायों के अनन्त अनन्त भेद वर्तमान में हैं इनसे अनन्तगुणे पूर्व के अनन्तकाल में हो गये हैं और उनसे अनन्तगुणे आगामी काल में होंगे। इन सबको एकसमय में जो जानता देखता है, उसे सर्वज्ञदेव कहते हैं।

कवि का अन्तिम कथन

छप्पय।

चरचा मुखसौ भनै, सुनै प्राणी नहिं कानन।
 केई सुनि घर जाहिं, नाहिं भाखै फिरि आनन॥
 तिनिकौ लखि उपगार, सार यह सतक बनाई।
 पढ़त सुनत है बुद्ध, सुद्ध जिनवानी गाई॥
 इसमै अनेक सिद्धान्तकौ, मथन कथन दानत कहा।
 सबमाहिं जीवकौ नाव है, जीवभाव हम सरहदा।१०३॥

अर्थ— शास्त्र सभादि में मुँह से यदि चर्चा की जाती है— शास्त्र की बातें सुनाई जाती है, तो बहुत से प्राणी कान लगाकर नहीं सुनते हैं और बहुत से सुनकर घर चले जाते हैं— व्यापार धन्धों में फँस जाते हैं, इसलिए फिर कभी मुँह पर भी उसे नहीं लाते हैं। ऐसे लोगों का उपकार देखकर— यह समझकर कि इससे उनका लाभ होगा— वे इसे कंठ कर लेंगे, तो चरचा को नहीं भूलेंगे। यह साररूप चरचाशतक बनाया है। इसके पढ़ने सुनने से बुद्धि बढ़ेगी। इसमें शुद्ध जिनवाणी कही गई है। इस चरचा शतक में दानतराय कवि ने (मैंने अनेक सिद्धान्तों के कथन का मथन करके अर्थात् बहुत से ग्रन्थों का सार लेकर वर्णन किया है। इस सारे ही ग्रन्थ में जीव का नाम है अर्थात् इसके प्रत्येक पद्य में जीव पदार्थ का अथवा उसके सम्बन्धी भावों, कर्म प्रकृतियों, योनियों, नरक स्वर्गादिकों का वर्णन है। जीव भाव का अर्थात् जीवतत्त्व का मैंने श्रद्धान किया है।

समाप्त

परिशिष्ट।

पृष्ठ ११२— क्षेत्रपरावर्तन का खुलासा स्वरूप—

कोई सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव जघन्य अवगाहना के शरीर को धारण करके मेरु के नीचे लोक के मध्यभाग में इसप्रकार जन्म धारण करे कि जिसमें उक्त जीव के मध्य के आठ प्रदेश लोक के मध्य के आठ प्रदेशों में आ जाँय। इसके बाद आयु पूर्ण होने पर मर जाय। फिर संसार में भ्रमण कर किसी काल में वहीं उसी प्रकार जन्म ले, मरकर फिर संसार में भ्रमणकर वहीं उसी प्रकार जन्म ले। इसप्रकार भ्रमण करता करता असंख्यात बार वहीं उसी प्रकार जन्म ले। इसके बाद एक प्रदेश आगे के क्षेत्र में जन्म ले। इसी प्रकार श्रेणीबद्ध क्रम से एक एक प्रदेश बढ़ता हुआ लोकाकाश के सम्पूर्ण प्रदेशों में जन्म ले। क्रमरहित प्रदेशों में जन्म लेना इसमें शामिल नहीं होता। इस तरह जितने काल में वह जीव अपने जन्मद्वारा लोकाकाश के सम्पूर्ण प्रदेश पूरे करे, उतने काल को उसका एक क्षेत्रपरावर्तनकाल समझना चाहिए।

पृष्ठ ११२— पुद्गल परावर्तन का खुलासा स्वरूप—

इसके दो भेद हैं एक नोकर्मपुद्गलपरावर्तन और दूसरा कर्मपुद्गलपरावर्तन। औदारिक वैक्रियक आहारक इन तीन शरीरों और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को नोकर्म और ज्ञानावरणादि कर्मों की पुद्गलवर्गणाओं को कर्म कहते हैं। यह जीव प्रत्येक समय में कर्म नोकर्मवर्गणाओं को ग्रहण करता रहता है। मान लो कि किसी जीव ने किसी एक समय में जो नोकर्मवर्गणाएँ ग्रहण कीं वे दूसरे तीसरे आदि समयों में निर्जीर्ण हो गईं। अब उन वर्गणाओं की जितनी संख्या थी और उनमें जितना स्निग्ध रूक्ष वर्णगन्धत्व तथा उनका तीव्र मध्यम मन्द परिणाम था, कालान्तर में वे ही वर्गणाएँ उतनी ही संख्या और परिणाम को लिये जब यह जीव ग्रहण करेगा, तब एक नोकर्मपुद्गल परावर्तन होगा।

इसी प्रकार किसी जीव ने किसी समय में ज्ञानावरणादि कर्मों के योग्य पुद्गलवर्गणाएँ ग्रहण कीं और वे द्वितीय तृतीयादि समयों में झड़ गईं। अब उन वर्गणाओं की भी जितनी संख्या और जितना उसमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध तथा उनका तीव्र मन्द मध्यम परिणाम था कालान्तर में जब वह जीव उतनी ही संख्या और परिणाम को लिए उन्हीं वर्गणाओं को ग्रहण करेगा तब एक कर्मपुद्गलपरावर्तन गिना

जायगा। बीच में अगृहीत मिश्र या मध्यगृहीत अनन्त बार ग्रहण करेगा; परन्तु वह इसकी गिनती में न आयगा।

—धर्मप्रश्नोत्तर।

पृष्ठ १३० के ८९ नम्बर के पद्य का जो अर्थ किया गया है उसमें जो १६ दृष्टान्त दिये गये हैं वे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन के भेदों के बतलाये गये हैं; परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वे दृष्टान्त तीव्रता मन्दता की अपेक्षा हैं सम्यक्तव या चारित्र घातने की अपेक्षा नहीं। अर्थात् यह नहीं कि जो क्रोध पत्थर की लकीर के समान होता है वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है और जो हलकी लकीर के समान होता है वह अप्रत्याख्यानी क्रोध है; अथवा जो पाषाण के खम्भ के समान होता है वह अनन्तानुबन्धी मान है और जो हड्डी के स्तम्भ के समान होता है वह अप्रत्याख्यानी है; किन्तु तीव्रता मन्दता की अपेक्षा क्रोध मान माया और लोभ इन चारों कषायों के (चाहे वे अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी हों चाहे प्रत्याख्यानी आदि सम्बन्धी) चार चार दृष्टान्त दिये हैं और इस तरह इन चारों के १६ भेद बतलाए हैं। स्वाध्याय करते समय उक्त पद्य के अर्थ में इतना संशोधन कर लेना चाहिए।